वर्ष ८, अंक ४

श्रीकृष्णाय नमः

पौष पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गा [illegible]क्षा और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, [ज]लाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का [प्र]चार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार [क]रना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा [क]र शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में [भ]गवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा [औ]र प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रका[शि]त हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे [व]ह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखों को प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
डा० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई० रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर भंवरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	५२)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		९७
२.	भगवद्भक्ति	[श्रीस्वामी भोले बाबा जी	९८
३.	भिक्षा (कविता)	[श्री गौरीशंकर जी ब्रह्मचारी	१०४
४.	महात्मा रामसतवरंज	[श्रीयमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव	१०५
५.	प्रेम प्याला	[श्री प्रेम पथ पथिक	१०८
६.	स्वावलम्बन	[श्रीमती सूरजदेवी प्रभाकर	११०
७.	त्रिदेवगत विष्णु और भगवान् श्रीराम	[श्रीमहावीर प्रसाद बजरंगबली	१११
८.	अभिलाषा (कविता)	[श्रीमती ब्रजकुमारी प्रभाकर	११४
९.	मोक्ष का ईश्वर भक्ति ही सर्वोपरि साधन है	[श्री स्वामी आत्मानन्द जी	११५
१०.	मन ही संसार है	[श्रीमती सूरज देवी प्रभाकर	११५
११.	सेठ मेलाराम के सात प्रश्नों का उत्तर	[श्री ईश्वरीदत्त पाण्डे	११७
१२.	गुरु के प्रति शिष्य का भाव	[श्रीमहात्मा राम	११९
१३.	कृष्ण से (कविता)	[श्री० पं० बाबूलाल भार्गव	१२१
१४.	योग साधन	[श्रीस्वामी शिवानन्द जी	१२२
१५.	महात्माओं के वचन		१२५
१६.	भजन		१२८

व्रज-नवयुवराज

Gita Press, Gorakhpur.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा, दिसम्बर १९३३ | अंक ४ पूर्ण संख्या ८८

वेदोपदेश

ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ १॥

यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमन, देवों को बुलाने वाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूं॥ १॥

अग्नि! पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एह वक्षति॥ २॥

प्राचीन ऋषियों ने जिनकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि लोग जिनकी स्तुति करते हैं वह अग्निदेवों को इस यज्ञ में बुलावें॥ २॥

उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥ ३॥

हे अग्ने! हम अनुदित दिनरात अन्तस्तल के साथ तुम्हें नमस्कार करते करते तुम्हारे पास आते हैं॥ ३॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥ ४ ॥

हे अग्ने! तुम प्रकाशमान, यज्ञ रक्षक, कर्मफल के द्योतक और यज्ञशाला में वर्द्धनशाली हो॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ५ ॥

जिस तरह पुत्र पिताको आसानी से पा जाता है, उसी तरह हम भी तुम्हें पासकें, व तुम हमारे अनायास लभ्य बनो और हमारा मङ्गल करने के लिये हमारे पास निवास करो ॥ ५ ॥

ऋ० मं०१, सू० १, मं० १, २, ७, ८, ६,

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

कथा माधवदास जी की

कधागढ के रहने वाले माधवदास भगवत् के ऐसे प्रेमी भक्त थे कि जब भगवच्चरित्रों का गान कीर्तन सुनते अथवा आप कीर्तन करते, तो भगवत् के रूप माधुरी के चिन्तवन में बेसुधि हो कर लोटने लगते, भगवद्भक्तों में पुत्र पौत्रों का सा दृढ़ प्रेम रखते थे और तन मन से उनकी सेवा टहल किया करते थे। इनके नगर का अधिपति भगवत् से विमुख था, दुष्ट लोगों ने उसको बहका दिया कि माधवदास अपने को संसार में दिखलाने के हेतु भगवत्प्रेम के बहाने से झूंठ मूंठ धरती पर लोटा करता है। अज्ञानी राजा ने परीक्षा के निमित्त अपने स्थान पर समाज ठहराया और तिमहले पर समाजी सभा ठहरी। समाज के समय माधवदास जी ने नूपुर कीर्तन किया, बेसुध हो कर लोटने लगे और उसी दशा में मकान की छत से एक तप्तघृत के कड़ाह में, जिसमें उत्सव के निमित्त पकवान बनता था, गिर पड़े! भगवत् ने ऐसी रक्षा की कि किसी अंग में कुछ चोट न आयी। इस चरित्र से राजा के हृदय की आंखें खुल गयीं और वह लज्जा करके भक्तों का मान करने लगा और भक्त हो गया।

दो०—रक्षक जब रघुवीर हैं, शत्रु करें क्या खोट।
माधव छत पर से गिरे, लगी लेश ना चोट ॥

कथा नारायण दास जी की।

नारायणदास जी नर्तक अर्थात् नृत्य करने वाले और भगवत् प्रेम के स्वरूप थे। यद्यपि संसार में हजारों नाचने वाले हो गये हैं और हैं, परन्तु जो भगवत् प्रेम इनमें था, दूसरे में नहीं हो सका। इनका यह नियम और प्रण था कि सिवाय भगवत् के अन्य किसी के सामने नृत्य या गान नहीं करते

थे। एक बार वे तीर्थ और भगवन्मन्दिरों की यात्रा करते हुए प्रयागराज से छः कोस पूर्व हंडिया सराय में पहुंचे और उनके नृत्य और गान की धूम नगर में हो गयी। वहां का हाकिम यवन था, उसने इनको बुलाने को अपने मनुष्य भेजे। नारायण दास जी ने यवन के सामने भगवत् का सिंहासन ले जाना उचित न समझा और उसकी अभिलाषा भंग करना भी अच्छा न समझा, परवश हो कर अपने जी में एक विचार ठहरा कर गये और ऊंचे सिंहासन पर शास्त्र के वचन से तुलसी और भगवत् में भेद न समझ कर तुलसी की माला विराजमान करके नृत्य और गान करने लगे और मोसलमान की ओर जो बैठा था, भूल कर भी न देखा।

जब इन्होंने मीरां बाई के विष्णुपद का यह ध्रुव 'सांवरो प्रीति ही को नातो। कै जाने राधिका नागरी कै मदन मोहन रंगरातो।' कीर्तन किया, तो उसके अर्थ और भाव को समझ कर प्रिया प्रियतम के चिन्तवन में वे बेसुधि हो गये और उसी बेसुधि की दशा में उस विष्णुपद के अर्थ के अनुकूल भीतर और बाहर की आंखों में वह समाज समाया कि व्रजमोहन महाराज और वृषभानुनन्दनी परस्पर की प्रीति और स्नेह से आनन्द में भरे खेल और विहार, नृत्य और गान में लवलीन हैं और नृत्य की दशा में तिरछा देखना और त्रिभंगी लटक सारे रूप व्रजकिशोर महाराज ने परम शोभा और शृंगार रूप व्रजनारी जी ने ऐसा घटा और समाँ का स्वरूप पकड़ा कि नारायणदास जी को अत्यन्त चाव से कुल निछावर करना उचित हुआ और अपने प्राण से बढ़कर दूसरी वस्तु अपने पास न देख कर प्राणों को ही तुरन्त युगल स्वरूप के ऊपर निछावर करके वे नित्य विहार और परमानन्द में जा मिले।

दो०—प्रेमी नारायण सा कहीं, देखा सुना न कोय।
प्राण निछावर देय कर, विरला कोई होय॥

कथा लीलानुकरण की।

पुरुषोत्तमपुरी में एक ब्राह्मण ऐसे प्रेमी भक्त थे कि भगवत् रूप के अनुभव में मग्न होकर तन्मय और बेसुधि हो जाते थे। एकबार परम पवित्र नृसिंह चतुर्दशी के दिन लोगों ने नृसिंह जी की लीला तैयार की और उस ब्राह्मण को भगवद्भक्त और प्रेमी जान कर नृसिंह जी का रूप बनाया। जब उस चरित्र का कीर्तन होने लगा कि नृसिंह जी ने हिरण्यकशिपु को अपने नखों से उसका उदर चीर कर मार डाला, तो उस ब्राह्मण को अनुकरण का ध्यान रहा और जो नृसिंह जी को करना उचित था, वह ही उसने किया अर्थात् जो पुरुष हिरण्यकशिपु का रूप बना था, उसका उदर अपने नखों से चीर कर उसको मार डाला और प्रह्लाद को राज्य दिया।

लोगों ने उसका वध शत्रुता के कारण से समझा और भगवद्भक्तों ने यह कहा कि शत्रुता नहीं, नृसिंह जी का अंश इस ब्राह्मण में आ गया था। नितान्त सब का यह सम्मत ठहरा कि रामलीला के समय इस ब्राह्मण को दशरथ महाराज का अनुकरण बनाना चाहिये, उस समय प्रेम और शत्रुता का वृत्तान्त खुल जायगा। रामलीला में वैसा ही किया गया। जिस समय यह चरित्र आया कि रघुनन्दन स्वामी जनकनन्दिनी और लक्ष्मण सहित वन को गये और सुमन्त मन्त्री ने आकर राजा दशरथ को रघुनन्दन स्वामी का वृत्तान्त सुनाया और राजा ने संदेशे के सुनते ही प्राण त्याग दिये, ब्राह्मण ने रघुनन्दन स्वामी का

संदेशा सुमन्त के मुख से सुनते ही उसी घड़ी अपने प्राण भगवत् के ऊपर निछावर कर दिये और दशरथ महाराज से बढ़कर पदवी पाई। सच है कि प्रेम का ऐसा ही प्रताप है!

दो०—यही रूप है प्रेम का, हो जावे तद्रूप।
प्यारे के तद्रूप हो, सो भक्तों का भूप॥

कथा मुरारिदास जी की।

मुरारिदास जी श्रीरघुनन्दन स्वामी के प्रेमी भक्त मारवाड़ देश के बलबड़ा शहर में रहते थे। भगवत् का उत्साह और हरिभक्तों की सेवा करने में अद्वितीय थे। इन्होंने कीर्तन करते समय श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरित्रों में लवलीन होकर प्रेम की अन्त दशा की हरिभक्तों को शिक्षा दी। एक चमकार भगवत्सेवा पूजा बड़े भाव से करके बड़े उच्चस्वर से नित्य कहा करता था कि जो भगवत् के चरणामृत का अधिकारी हो, वह ले जावे। मुरारिदास जी राह चलते वह शब्द सुन कर उसके घर गये। इनको देख कर वह चमार डर से काँप उठा मुरारिदास जी ने उस को आश्वासन दिया और कहा कि भय किस हेतु करता है। केवल चरणामृत के निमित्त आया हूं! चमारने विनय किया कि महाराज! मैं जाति का चमार हूं, आपको चरणामृत कैसे देसका हूं। मुरारिदास जी ने उत्तर दिया कि तू हम से भी अच्छा है और यदि तुझको कुछ डर है तो मैं किसी से नहीं कहूंगा! इतना कह कर मुरारिदास जी विह्वल हो गये, उनकी आंखों में से जल बहने लगा। चमार ने पूछा कि महाराज! तुम रोते क्यों हो। मुरारि दास जी ने उत्तर दिया कि मेरी आँखों में से पानी निकला करता है। चमार ने बड़े विनय से कहा कि महाराज! आपको मुझ नीच से चरणामृत लेना न चाहिये। मुरारिदास जी ने न माना और हठ करके चरणामृत लिया, भगवद्भक्ति को मुख्य समझा और जाति कर्म आदि पर धूल डाल दी।

हे मंसाराम! मुरारिदास जी इस चरित्र से तीनों प्रकार के लोगों को शिक्षा करते हैं अर्थात् जो लोग भगवत्प्रेम और भक्ति की सिद्ध दशा को पहुंच गये हैं, उनको तो यह शिक्षा है कि जाति इत्यादि का बन्धन उन लोगों को है जो भगवत्प्रेम में दृढ़ नहीं हुए, इसलिये तुम उस दृढ़ता पर स्थिर रहना। साधक लोगों को यह उपदेश देते हैं कि भगवद्भक्ति में और प्रेम में वह पदवी प्राप्त करनी चाहिये कि भेद और द्वैत दूर हो जाय। भगवत् से विमुख पुरुषों को यह शिक्षा देते हैं कि तुम से चमार अच्छे हैं, जो भगवत्सेवा करते हैं। हे मंसाराम! पूर्ण भक्त जो करें, सब ठीक ही है!

मुरारिदास जी का यह वृत्तान्त सारे नगर में फैल गया और सब लोग प्रकट पुकारने लगे। राजा तक यह समाचार पहुंचे, उसे भी यह बात अच्छी न लगी, उसका मन इनकी तरफ से गिर गया। एक बार मुरारिदास जी राजा को देखने गये, तो उन्होंने राजा में पहिला सा भक्तिभाव न देखा। मुरारिदास जी वैराग्यवान् पुरुष तो थे ही, सब त्याग कर किसी अन्य स्थान पर जाकर रहने लगे। उनके जाने से भगवद्भक्तों का आना निर्मूल बन्द हो गया और राजा प्रतिवर्ष उत्सव किया करता था और देश २ के साधु भगवत् भक्त मेले में एकत्र होते थे, उस साल कोई न आया और उपाधि, उपद्रव और अकाल का आगमन दिखायी देने लगा, तब तो राजा शोक युक्त हो कर मुरारि दास जी को लौटा लाने के लिये चला और उनके पास जाकर अत्यन्त दीनता और नम्रता से साष्टांग

दण्डवत् करने लगा। ऐसे भगवद्विमुख से गुरु की निन्दा होती है, ऐसे का मुखन देखना चाहिये, ऐसा सोच कर मुरारिदास जी ने मुख फेर लिया। राजा दीनता और दुःख से लज्जा की नदी में डूब कर हाथ जोड़ कर खड़ा रहा और फिर दण्डवत् करके प्रार्थना करने लगा कि आप मेरे ऊपर दया करके जो दण्ड उचित समझें वह मुझे दें! इतना कह कर कटाक्ष का यह वचन भी कहा कि मेरे अच्छे भाग्य होने में कुछ संदेह नहीं कि आप जैसे गुरु मुझे मिले परन्तु आप की कृपा और दया की न्यूनता अवश्य है कि आपके चरणों में मुझे विश्वास न रहा!

मुरारिदास जी इस कटाक्ष युक्त वचन से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वाल्मीकि रामायण का प्रसंग कि श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर के यज्ञ में सब से ऊंचे आसन पर बैठा कर द्रौपदी के हाथ से उसे भोजन कराया, शबरी का प्रसंग कि ऋषीश्वरों ने उसके चरण पकड़े और उस के चरणों के प्रभाव से तड़ाग पवित्र हो गया, निषाद का प्रसंग कि वसिष्ठ जी और भरत जी ने अपने पास बैठाया, और हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, गज, गणिका इत्यादि का वृत्तान्त सुनाकर राजा के हृदय का अन्धकार दूर कर दिया और भगवद्भक्ति और भगवद्भक्तों का विश्वास दृढ़ कर दिया।

पश्चात् मुरारिदास जी राजा के नगर में आये और भगवद्भक्तों का समाज और संत्सग वैसा ही होने लगा और समस्त उपद्रव और उत्पात शान्त हो गये। एक बार समाज हुआ और जितने कीर्तन और भजन के ज्ञाता थे, सब मुरारिदास जी के चेले हो गये। भजन कीर्तन के समय भगवद्भक्तों ने मुरारिदास जी से कहा कि कुछ आप भी भजन करें। यह सुन वे उठे और घुंघरू बाँध कर नृत्य करने लगे, भगवद्भक्त भी नृत्य करने लगे, तो सब राग रागिनी, सातों स्वर, तीनों ग्राम और इक्कीसों मूर्च्छना आकर प्राप्त हुई और ऐसा समाज हुआ कि किसी ने न देखा था, न सुना था!

जब श्रीरघुनन्दन स्वामी के वन के जाने का चरित्र भगवद्भक्तों ने कीर्तन किया, तो मुरारिदास जी भगवत् के विरह में तन्मय हो गये और चित्र के सदृश ज्यों के त्यों रह गये! अनुमान होता है कि उन्होंने समझा कि उस वन और भयंकर अरण्य में परम सुकुमार रघुनन्दन स्वामी, जानकी महारानी और लक्ष्मण जी की सेवा कौन करेगा? इस हेतु यह प्राण संग भेजना उचित है, यह दशा देख कर उस समाज ने बहुत दुःख पाया और मुरारिदास जी श्रीरघुनन्दन स्वामी के परम पद को पहुँच गये।

दो०—जैसा जिसका भाव हो, वैसा ही फल पाय।
भक्त भाव का इष्ट का, इष्ट मांहि मिल जाय॥

कथा गदाधर भट्ट जी की।

गदाधर भट्ट जी प्रेमभक्ति के समुद्र, सुशील, मधुर भाषी, सहज स्वभाव, निस्पृही, भगवद्भजन में अनन्य और लोगों को भगवद्भक्ति में दृढ़ करने वाले थे, किसी से कुछ चाहना नहीं रखते थे और भगवद्भक्तों की सेवा ऐसे प्रेम से करते थे, मानों इसीलिये उनका जन्म हुआ था। उनका यह विष्णु पद-'सखी हों श्याम रंगरंगी। देखि विकाय गयी वह सूरति सूरति माँहि पगी।' जीव गोसाई जी ने सुना और दो साधुओं के हाथ एक चिट्ठी लिख कर भेजी, उस चिट्ठी में यह लिखा था कि तुम पर बिना रैनी रंग किस प्रकार चढ़ गया? हमको चिन्ता है। इस लिखने का तात्पर्य प्रथम यह कि बिना वैराग्य अर्थात् त्याग बिना भक्ति का रंग

चढ़ना अति कठिन है और तुमने अब तक गृह और कुटुम्ब का त्याग नहीं किया फिर तुम रंग में कैसे रंग गये। दूसरे यह कि श्रीवृन्दावन भगवद्रूप के रंग की रैनी है, इसलिये वृन्दावन वास बिना रंग किस प्रकार चढ़ गया।

साधु लोग इस चिट्ठी को लेकर भट्ट जी के नगर में जा पहुंचे। संयोगवश भट्ट जी नगर के बाहर किसी कुवे पर बैठे थे, इन्हीं से साधुओं ने पूछा कि कि गदाधर भट्ट कहां रहता है। भट्ट जी ने पूछा कि तुम कहां से आये हो और कहां रहते हो? साधुओं ने कहा कि सब धामों का परमधाम वृन्दावन है, वहां रहते हैं और वहीं से आये हैं। भट्ट जी उस परम अभिराम नाम के सुनते ही प्रेम से बेसुधि हो कर गिर गये, कुछ काल पीछे जब सुधि आई तो परम आनन्द में मग्न, मौन हो कर चित्र की मूर्ति के सदृश भगवद्रूप के चिन्तन में बैठे रहे! साधुओं से किसी ने कहा कि गदाधर जी महाराज यह ही हैं। साधुओं ने वह चिट्ठी उन को दी। भट्ट जी पत्री पढ़ कर, शिर पर चढ़ाकर वृन्दावन और वृन्दावन बिहारी के रूप में मग्न हो कर उसी क्षण वृन्दावन को चल खड़े हुए और वहां पहुंच कर जीव गोसाँई से मिले। दोनों परम भागवतों के प्रेम की नदी ऐसी उमड़ी कि दोनों उसमें डूब गये और परस्पर के सत्संग से दोनों ने अपने भाग्य को धन्य मान कर भगवान् की बड़ी कृपा समझी!

गदाधर भट्ट जी ने जीवगोसाईं जी से भगवच्चरित्र, रस, रास और प्रिया प्रियतम के कुञ्ज बिहार के सब ग्रन्थ पढ़े और भगवत् के रंग रूप में रंगीन हो गये।

भट्ट जी श्रीमद्भागवत की कथा नित्य कहा करते थे, वृन्दावन के निकट के दरैरग्राम का रहने वाला कल्याणसिंह नामी एक राजपूत कथा सुन कर भगवद्भक्ति में सावधान हुआ और अपने घर का आना जाना छोड़ कर वृन्दावन में रहने लगा। उसकी स्त्री ने समझा कि भट्ट जी के सत्संग से मेरे पति की घर की चाहना जाती रहेगी, इसलिये उसने अपने पति को वे विश्वास करने के लिये एक गर्भिनी भिक्षा मांगने वाली को बीस रुपया देना कह कर और कुछ सिखा पढ़ा कर अपनी दासी के साथ भट्ट जी के पास भेजा। वह स्त्री लोभ में बद्ध होकर जहां भट्ट जी कथा कहते थे, वहां आई और पुकार कर कहने लगी कि तब तो तुम को मेरे साथ वह हेल मेल था कि गर्भ रह गया और अब ऐसी निठुराई है कि खर्च भेजना भी बन्द कर दिया! भट्ट जी ने कथा कहते ही में उत्तर दिया कि ठीक है, परन्तु मेरा इसमें क्या अपराध है, तुमने ही दर्शन नहीं दिये! कथा में जितने लोग थे, उन में से किसी को विश्वास न आया। सब एक साथ बोल उठे कि निपट झूठ है और यह पापिनी दण्ड देने के योग्य है।

राधावल्लभलाल जी के गोसाँई को इस वृत्तान्त का समाचार पहुंचा, वे बहुत दुःखी हुए और उन्होंने उस स्त्री को बुला कर बहुत धमकाया और कहा कि सच कह, नहीं तो जीती नहीं छोड़ूंगा! उसने जो बात सत्य २ थी, वह सब कह दी। जब कल्याण सिंह ने अपनी स्त्री के त्रिया चरित्र के समाचार पाये, तो वह तलवार लेकर उसके मारने को उद्यत हुआ। भट्ट जी ने कल्याणसिंह से कहा कि कदापि स्त्री को कुछ न कहना चाहिये, इतना ही बहुत है कि उसका त्याग हो गया।

एक दिन किसी देश का एक महन्त कथा सुनने आया, भट्ट जी ने उसे सब से आगे बैठाया, उस महन्त ने देखा कि सब श्रोता प्रेम में भरे हुए

भगवच्चरित्र सुन रहे हैं और उनकी आंखों से प्रेम का जल बह रहा है परन्तु मेरी आंखों में जल की एक बून्द भी नहीं निकलती सब लोग मेरी महन्तता पर अवश्य व्यंग बोलेंगे। ऐसा विचार कर दूसरे दिन वह चादर के कोने में लाल मिरच बांध कर कथा में जा बैठा और आंखों में मिरच डाल डाल कर खूब पानी बहाया। एक साधु ने इस बात को ताड़ लिया और भट्ट जी से सब वृत्तान्त कह दिया। भट्ट जी अपने हृदय की सच्चाई से यह समझे कि उस महन्त ने इसलिये अपनी आंखों में मिरच डाली हैं कि जिन आंखों से प्रेम का जल न बहे, उनमें मिरच डालनी अच्छी है। कथा पीछे भट्ट जी बहुत प्रसन्न हो कर उस महन्त से मिले और उनका यह मिलना उसके लिये ऐसा रसायन हो गया कि थोड़े दिनों में दूसरे प्रेमियों से भी वह अधिक प्रेमी हो गया।

एक बार गदाधर जी के स्थान में चोर आया और वस्त्रादिकों की भारी पोट बांध कर उठाने लगा परन्तु भारी होने के कारण उठा न सका। भट्ट जी ने आकर आप गठरी उठवा कर उसके शिर पर रखदी। चोरने सोचा कि यह मनुष्य कौन है कि पकड़ता नहीं है और गठरी उठादी है। यह सोच कर चोरने पूछा कि तुम कौन हो, भट्ट जी ने अपना नाम बताया, चोर गठरी छोड़ कर चरणों में पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा। भट्ट जी बोले कि निर्भय हो कर लेजा, और जो कुछ चाहिये, ले ले और शीघ्र चलाजा! चोर ने हाथ जोड़ कर विनय किया कि अब तो मुझे वह निरुपाधिक धन प्रदान कीजिये कि दोनों लोकों की चिन्ता से निश्चिन्त हो जाऊं। यह कह कर चोरने रोकर चरण पकड़ लिये। भट्ट जी ने दया करके उसको मन्त्र उपदेश किया और इस चोरी से छुड़ा कर माखन चोर का हाथ पकड़ा दिया।

भट्ट जी की यह रीति थी कि भगवत् की रसोई की सेवा सब अपने हाथ से किया करते थे, सेवक और चाकर बहुत थे, परन्तु भगवत्सेवा में किसी को प्रवृत्त नहीं होने देते थे। एक दिन वे भगवत् रसोई का चौका दे रहे थे, कोई साहूकार इनके दर्शन को आया और बहुत सा रुपया भेंट के निमित्त लाया। एक सेवक ने भट्ट जी से विनय किया कि चौका छोड़ कर, हाथ धोकर शीघ्र ही गद्दी पर चलिये, क्योंकि बड़ा भारी सेवक आया है। भट्ट जी ने अप्रसन्न हो कर कहा कि भगवत् सेवा से मुख्य दूसरा कौन सा काम है कि जिसके लिये सेवा छोड़दी जाय। गदाधर भट्ट जी के ऐसे बहुत से चरित्र आनन्द के देने वाले हैं।

कु०—जब तक मन में लोभ है, भक्त नहीं हो कोय।
जो पण्डित निर्लोभ है, भक्त कहावे सोय॥
भक्त कहावे सोय, अहंता ममता त्यागे।
सब से नाता तोड़, ईश में ही अनुरागे॥
शिक्षा देता भट्ट, कृष्ण मिलते ना तब तक।
धन का होवे लोभ, देह में ममता जब तक॥

कथा रतवन्ती की।

रतवन्ती बाई परम भक्ता वात्सल्य उपासक थीं, भगवद्भजन और भोग इत्यादि की सामग्री की तैयारी में सर्वदा लवलीन रहा करती थी, श्रीमद्भागवत् कथा कहीं होती, तो उसमें उनका नित्य जाने का नियम था। एक दिन वे भगवत् की रसोई बनाती थीं, रसोई को छोड़ कर कथा में जाना उन्होंने उचित न समझा, क्योंकि सेवा की विशेषता है, अपने पुत्र को कथा में भेज दिया। उस दिन कथा में यह प्रसंग था कि नन्दनन्दन व्रजचन्द महाराज माखन को चुरा कर अपने मित्रों और

बन्दरों को खिला रहे थे, यह चरित्र यशोदा जी ने अपनी आंखों से देखा और उसी दिन कितने ही इसी प्रकार के व्रज सुन्दरियों के उरहने भी पहुंच चुके थे, इसलिये नन्दरानी जी ने व्रजभूषण महाराज को ऊखल से बांध दिया। रतवन्ती के बेटे ने यह सब कथा आकर कह दी। जिस समय उस लड़के के मुख से यह बात निकली कि रस्सी से बांध दिया, तो वे विह्वल हो गयीं और कहने लगी कि यशोदा बड़ी कठोर है, उस सुकुमार, कोमल अंग परम सुन्दर ने रस्सी का बन्धन कैसे सहा होगा। हाय! वह मेरा मनोहर बालक तो ऊखल से बंधा हो और मैं सुख से बैठी रहूं, यह कह कर उसी घड़ी अपने प्राण निछावर करके नित्य परमानन्द को पहुंच कर अपनी आंख की पुतली और कलेजे के टुकड़े श्याम सुन्दर को ऊखल से छुड़ाया, जिस की माया की फांसी में करोड़ों ब्रह्माण्ड बन्ध रहे हैं!

दो०—रतवन्ती का प्रेम यह, समझ सके ना मूढ।
कृष्ण प्रेम में चूर ही, रहस्य जाने गूढ॥

कथा जस्सूधर जी की।

देवदास वंश में जस्सूधर जी ऐसे दृढ भक्त थे कि इनके पुत्र, स्त्री आदि सब भगवदाराधन थे। जिस भाव से भगवत् में इनका प्रेम और स्नेह था, उसी भाव से ये भगवद्भक्तों की सेवा करते थे। रघुनन्दन स्वामी के चरित्रों में इनकी इतनी प्रीति थी कि उनके चरित्रों को सुन कर भगवत् रूप के ध्यान में बेसुधि हो जाते थे। एक बार रामायण में पढ़ा कि विश्वामित्र ऋषीश्वर आये, उन्होंने दशरथ महाराज से श्री रघुनन्दन स्वामी और लक्ष्मण जी महाराज को मांगा और भक्तवत्सल महाराज ऋषीश्वर के साथ चलने को तैयार हुए, उस चरित्र के वर्णन करते समय वे उसी समाज के तद्रूप हो गये अर्थात् कहने लगे कि महाराज! मैं भी साथ चलता हूं! भगवत् ने साक्षात् हो कर कहा कि तुम यहीं ही रहो, हम थोड़े दिन में विश्वामित्र जी का यज्ञ पूर्ण करके आते हैं। जस्सूधर जी ने उस रूप माधुरी को संमुख देख लिया था कि जिसकी शोभा के एक कण की शोभा में कोटानकोट ब्रह्माण्डों की शोभा है, तो भला फिर वियोग कैसे सहा जाय? रहने की आज्ञा सुनते ही अपने प्राण भगवत् शोभाधाम के ऊपर निछावर करके नित्य परम आनन्द को प्राप्त हुए।

दो०—जिस भगवत् की कथा सुन, सुख अपूर्व नर पाय।
तिस से मिल कर हो सुखी, इसमें क्या आश्चर्य॥

कथा कृष्ण दास की।

कृष्णदास जी ब्रह्मचारी सनातन जी के चेले थे। जब श्रीमदन मोहन जी महाराज का मन्दिर तैयार हुआ और उसमें भगवत् की मूर्ति विराजमान हुई, तो सनातन जी ने कृष्णदास जी को भगवत् सेवा में प्रति योग्य जान कर उनको भगवत्सेवा सौंप दी। कृष्णदास जी ऐसे भाव और भक्ति से सेवा पूजा में तत्पर हुए कि जिससे भगवत् और गुरु दोनों प्रसन्न हुए। पीछे कृष्णदास जी ने नारायण भट्ट को भक्त और प्रेमी जान कर अपना चेला किया। कृष्णदास जी भगवत् का शृंगार करके भगवत् की छवि को देखने लगे, भगवत् रूप में मग्न हो कर बेसुधि हो गये और प्रेम का इतना तरंग और झोंक बढ़ा कि उपाय करने से भी अपने घिराने की सुधि न आयी! जिस स्नेह

और प्रेम से श्रृंगार करते थे, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—कृष्णदास का चरित पढ़ि, पावन परम अनूप।
भोला! अपने इष्ट के, कौन न हो तद्रूप॥

भिक्षा

(ले० श्री गौरीशंकर जी ब्रह्मचारी)

भिक्षा दीजे ज्ञान की सद्गुरु दीन दयाल।
मोह तिमिर जासे मिटे, होवें परम निहाल॥
होवें परम निहाल, भये जस ध्रुव प्रहलादा।
अजामील गणकादि तरे, और कहूं क्या ज्यादा॥
करो अनुग्रह सद्गुरु दीजे वो ही दीक्षा।
जासे जीवन लाभ होय, मागे यही भिक्षा॥

महात्मा शमसतवेरज

[ले० श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव नरसिंहपुर]

महात्मा शमसतवरेज गज़नी के रहने वाले अद्वैतवादी फकीर थे। उन्हें सर्वत्र ही परमेश्वर दिखाई देते थे जैसा कि गुसाईं तुलसीदास जी ने कहा है:—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना॥
देश काल दिशि विदिशिहु मांही।
कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं॥

फूल और पत्तों में भी उन्हें परमेश्वर की सुगन्ध आती थी। जैसा कि अनन्तराम आदि कवियों ने कहा है:—

चंपा में 'चतुर्भुज' मोतिये 'मोहन लाल'।
केवड़ा में 'केशव', अरु जुही 'गिरधारी' है॥
गुलाब में 'गोपाललाल' सोसनी में श्यामलाल।
सेवती में 'सीता पति' मरुवे 'मुरारी' है॥
नरगिसमें 'नारायण', 'दामोदर' दाऊ दी में।
केवड़े में 'कृष्ण रूप' 'श्याम तन धारी' है॥
अनन्त फूल फूलन में फूल्यो अनन्त राम।
फूल-फूल पात-पात वासना तुम्हारी है॥

\+ + +

जाही जुही में 'कन्हैया' विराजें।
गुलेनारों में 'राधा' प्यारी बसें॥
चंपा में 'चतुर्भुज' बेला में 'बिहारी'।
दोना में 'गिरवरधारी' बसें॥
जाही जुही में 'कन्हैया' विराजें।
गुलेनारों में 'राधा' प्यारी बसें॥

\+ + +

गुलिस्तां में जाकर गुलोबर्ग देखा।
वह तेरी ही रंगत तेरी ही बू है॥
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है॥

उनका सारा संसार ही परमेश्वर-मय था यथा:—

जले विष्णु थले विष्णु विष्णु पर्वत मस्तके।
ज्वाल माला कुले विष्णु सर्वं विष्णुमयं जगत॥

\+ + +

कृष्ण जलं कृष्ण थलं कृष्ण बिन्दु सिन्धू॥
कृष्ण इष्ट कृष्ण मित्र कृष्ण पुत्र बन्धु॥

वे बहुधा यह कहा करते थे:—

रंग तू है नाम तू है, रूप तू है शक्ल तू।
अर्श से ता फर्श तू है, हर जगह आन तू॥
देखो जमीं से अर्श तक, और अर्श से ले फर्श तक।
हरजा हमारा माहरू, हाजिर है वह नाजिर है वह॥

चश्में हकीकत खोल कर, देखो तो वह है जलवा गर।
जलवा है उसका चार सू, हाज़िर है वह नाज़िर है वह॥
किसकी नज़र से है निहां, गिनहा नहीं वह है अयां।
हां रूबरू है रूबरू हाज़िर है वह नाज़िर है वह॥
परदा उठा पन्दार का, और देख जलवा यार का।
है दोस्त तुम से दू बदू, हाज़िर है वह नाज़िर है वह॥

वास्तव में उनका सिद्धान्त यह था—

तू पस्ती में बाला में, तू सू बसू है।
बना तू हर एक फूल में रंग व बू है॥
जो आईने में देखा, तो तू रूबरू है।
निगह जिस तरफ उठ गई तू ही तू है॥
मगर भेद इक और, अब वह खुला है।
कि मैं तुझ में, और मुझ में तू बस रहा है।

महात्मा शमसतबरेज़ अपने पीरमुरशद। कामिल अर्थात् गुरु की आज्ञा से तीर्थ यात्रा करते हुए मुलतान शहर में आ निकले। मुलतान उन दिनों चार चीज़ों के लिये प्रसिद्ध था जैसा कि निम्न लिखित कहावत में कहा है।—

'चार चीज़ अस्त तोहफये मुलतान।
गर्द, गरमा, गदा ओ गोरस्तान॥'

(भावार्थ)

चार चीजों के लिये प्रसिद्ध है मुलतान।
धूल, गरमी, भिक्षुक और कबरस्तान॥

मुलतान में फकीरों की कमी नहीं थी। ढेरों फकीर वहां मौजूद थे। उन सबों में भगवद्भक्त बहाबुलहक बहुत प्रसिद्ध थे। और खुदा दोस्त कहलाते थे। शमसतबरेज़ के पहुंचते ही उन्होंने यह कहने की इच्छा से,—'कि यहां अब अधिक फकीरों की गुञ्जायश नहीं है' एक प्याले में मुह तक दूध भर कर उनके पास भेज दिया। शमस तबरेज़ भी पक्के फकीर थे। खुदा दोस्त बहाबुलहक का मतलब समझ गये। उन्होंने कुछ गुलाब के पत्ते दूध पर डाल कर, यह कहने की गरज़ से।

'जिस तरह यह समाये हैं पत्ते गुलाब के।
या जल में समाये हैं छाले हुबाब के॥
इसी तरह कुल में जुगों से समा जांयगे जनाब।
इस बज़्म आशकी में समा जांयगे जनाब॥'

अर्थात् जिस तरह यह गुलाब के पत्ते दूध में समा गये हैं। और जिस प्रकार पानी में बुलबुले समाये रहते हैं उसी प्रकार हम भी आप ईश्वर प्रेमियों की महफिल में समा जांयगे।

प्याले को ज्यों का त्यों लौटा दिया।

कुछ दिनों तक तो खुदादोस्त बहाबुलहक ने कुछ नहीं कहा परन्तु जब महात्मा शमसतबरेज़ का अद्वैत वादी सिद्धान्त उनकी समझ में नहीं आया तब वे बिगड़ पड़े और महात्मा शमसतबरेज़ के काफ़िर अर्थात् नास्तिक होने का फतवा सादर कर दिया।

मुलतान में खुदा दोस्त बहाबुलहक का दबदबा था सारे शहर में उन्हीं की तूती बोलती थी। फतवे के निकलते ही, शहर भर में मज़हबी जोश फैल गया और धर्मान्ध हो कर सब लोग उन्हें ईर्षा और द्वेष की दृष्टि से देखने लगे यहां तक कि सबों ने मिलकर उन्हें खाना देने से भी इनकार कर दिया।

'जोश में मज़हब के इनसां भी कमीना हो गया।
तंग दिली से सबों का तारीक सीना हो गया॥
इस तअसुब के इवज़ में, जो दिया ईमान को।
एक टुकड़े के लिये भी तरसाया किया इनसान को॥'

महात्मा शमसतबरेज़ एक २ टुकड़े के लिये जिसे लोग कुत्तों को योंही दे डालते हैं, तरसने लगे। अकस्मात कहीं उन्हें एक मछली मिलगई परन्तु मुलतान वालों के हृदय इतने सियाह (काले) हो गये थे और उनकी प्रेमाग्नि इतनी ठण्डी पड़

खुशी थी कि किसी ने उसे भूनने के लिये उन्हें अग्नि तक नहीं दी।

मुलतान-वासियों से सर्व प्रकार से निराश होकर महात्मा शमसतबरेज़ एक टीले पर चढ़ गये और अपने स्वनाम-धन अर्थात् 'सूर्य नारायण' की स्तुति करने लगे। स्तुति यह थी–

'जो तू है सो मैं हूं, जुदा हम नहीं हैं।
तअसुब में बों, मुबतला हम नहीं हैं॥
अय हम नाम! इनकी दुई को जलादे।
तुही आग से अपनी मछली पकादे॥

फारसी भाषा में, 'सूर्यनारायण' का अर्थ 'शमसतबरेज़' है सूर्यनारायण अपने हमनाम, महात्मा शमसतबरेज़ की स्तुति सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुऐ। और अपनी असंख्य किरणों से अग्नि उगलने लगे जिससे उनकी उष्णता का ताप इतना बढ़ गया कि मछली स्वयं भुन कर कबाब हो गई। उसे खाकर महात्मा शमसतबरेज़ ने पेट की ज्वाला शान्ति की और अपना अद्वैतवादी झगड़ा खड़ा कर दिया। मुलतान वासियों के कृष्ण-हृदयों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। सब के सब उनके झण्डे के नीचे आगये और उनके शिष्य हो गये।

अद्वैतवादियों को निम्नलिखित मन्त्रों की साधना करना चाहिये।

'पिता हमस्य जगतो माता धाता पिता महा।
वैद्यं पवित्रमोंकार ऋक साम यजुरे च॥' ॥ गीता ९,१७

अर्थात् मैं इस अनन्त सृष्टि का माता पिता पितामह और रक्षक हूं ज्ञान तथा पवित्रता का परिणाम हूं या जानने योग्य और शुद्ध करने वाला जो 'ओ३म्' (प्रणव) है वह मैं हूं ऐसे ही ऋक साम और यजुर्वेद मैं हूं।

'मैंने माता दहर को हकने किया पैदा बले।
मैं वह खालिक हूं मेरे कुन से खुदा पैदा हुआ'॥

अर्थात् मैं यह स्वीकार करता हूं कि दहर अर्थात् सृष्टि को 'हक' अर्थात् 'खुदा' ने उत्पन्न की है परन्तु मैं वह 'खालिक' अर्थात् 'खुदा' हूं जिसकी इच्छा से वह 'खुदा' अर्थात् 'परमेश्वर' पैदा हुआ है।

+ + +

'जिधर देखता हूं जहां देखता हूं।
मैं अपनी ही ताव औरशां देखता हूं॥'

और परमात्मा का सब ठौर देखने का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिये:–

आंखें हैं दो हमारी, आगे को देखते हैं।
आता है काल पीछे, उसको न देखते हैं॥
जो भूलते नहीं हैं, अभ्यास को पहुंचते।
आगे भी देखते हैं, पीछे भी देखते हैं॥
अद्वैत ज्ञान वाले, जो एक देखते हैं।
भीतर भी देखते हैं, बाहर भी देखते हैं॥
अपने में देखते हैं, औरों में देखते हैं।
सब ठौर देखते हैं, चहुं ओर देखते हैं॥
पढ़ते भी एक ही हैं, सुनते भी एक ही हैं।
मन में भी एक ही को, अनुभव से देखते हैं॥
जो प्रेम एक ही से, सिद्धान्त एक रखते।
वे 'दास' पार होते, आनन्द देखते हैं॥

भगवान् हमारा और आपका कल्याण करें तथा अपने चरणों का प्रेम प्रदान करें।

भजन

दिन नीके बीते जाते हैं, सुमिरन कर मन राम राम।
दिन नीके बीते जाते हैं॥
सुमिरन कर मन राम नाम,
तज विषय भोग और सर्व काम।
तेरे संग चले नहिं एक दाम,
जो देते हैं सो पाते हैं॥

भाई बन्द और कुटुम्ब पसारा,
किसके हो तुम, कौन तुम्हारा।
किसके पल हरिनाम बिसारा,
सब जीते जी के नाते हैं॥
लख चौरासी भरम के आये,
बड़े भाग मानुष तन पाये।
इस पर भी नहिं करी कमाई,
फिर पाछे पछताते हैं॥
जैसे पानी बीच बतासा,
मूरख फंसा मृत्यु की फांसा!
वृथा है जीने की आसा,
गये सांस नहिं आते हैं॥

चेतावनी

राम भजन कर राम भजन कर, राम भजन कुछ पावेगा।
जन्म सफल कर जन्म सफल कर, नाहिं अन्त पछतावेगा॥
झूठी माया, झूठी काया, सा सग नह लगाया क्यों।
सुन मन मूरख सुन मन मूरख, हाथ तेरे क्या आवेगा॥
भरम भुलाना, भरम भुलाना, भरम फांस गले डाला है।
प्रभु सुमिरन कर प्रभु सुमिरन कर, इक दिन यहाँ से जावेगा
संग न साथी, संग न साथी, कोई नहिं अपना है जगमें।
गुरु सेवा कर, गुरु सेवा कर, गुरु भव पार लगावेगा॥
प्रीति हिये धर प्रीति हिये धर, प्रेम प्रीति रसमें पगजा।
छोड़ कुसंगत छोड़ कुसंगत, सतसंग काज बनावेगा॥
ज्ञान गंग बिच, ज्ञान गंग बिच, कर स्नान ज्ञान प्रानी।
अब अवसर है, अब अवसर है, फिर अवसर नहिं पावेगा॥
चेत सवेरे, चेत सवेरे, चलना बाट अकेला है।
भोग विषय तज, भोग विषय तज, भोग सोग उपजावेगा॥
काम-क्रोध मद, काम-क्रोध मद, काम क्रोध मद क्यों भूला।
नर अभिमानी, नर अभिमानी, काम जाल फैलावेगा॥

भजन

सब घर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हों, सब का किया विवेका हो॥
घाटे बाढ़े सब जग देखा, क्या गिरही वैरागी हो।
सुरुप अचारज दुख के डर से, गर्भ से माता त्यागी हो॥
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
पंडित दुखिया मूरख दुखिया, सुख से सकल जग सूना हो॥
सांच कहूं तो कोई न माने, झूंठ कहा नहि जाई हो।
ब्रह्मा, विष्णु, महेशुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया भूपत दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
कहें कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो॥

प्रेम-प्याला

[ले० श्री० प्रेम-पथ-पथिक]

अकथ कथा है प्रेम की, कही जात नहीं बैन।
रूप सिंधु भरि लेत हैं, पल-प्यालन में नैन॥

अहा! प्रेम से लबालब भरा प्याला भी कितना मतवाला कर देने वाला है। पीने की बात तो दूर रही, केवल देखने मात्र से आखों में पिनक छा जाती है और मतवाली आँखें उस प्यारे की खोज में दूसरे की ओर दृष्टि पात भी नहीं करना चाहतीं। वह तो प्रेम प्याले के नशे में चूर प्यारे चित चोर की तलाश में आसमान और ज़मीन के कुलाबें एक करने लगता है। उसके सारे शरीर में प्रेम-प्याले का असर हो जाता है और कभी हंसता है, कभी रोता है और कभी अटपटी बातें करने लगता है। उसे दूसरे अमल की आवश्यकता नहीं रह जाती:-

कबीरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय॥

वे कितने बड़ भागी हैं जिन्हें कृष्ण प्रेम का एक भी प्याला पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है!

सच मुच उनका मनुष्य जीवन सार्थक हो गया और वे निहाल हो गये। उनकी माता की गोद सफल हो गई, उसके पिता का शरीर पवित्र हो गया। उसके कुटुम्ब परिवार तर गये, उनका ग्राम पावन हो गया और वह देश जिसमें ऐसे पवित्रात्मा का जन्म हुआ पुनीत हो गया। उनसे जो दो बाते करता है अपने को कृत्य २ मानता है। और उसके सात पीढ़ी के पूर्वज नरक का दरवाजा तोड़ स्वर्ग में पहुंच जाते हैं पर यह तब होता है जब वह बड़भागी यह कहता फिरता है कि–

तुझे देखें तो फिर औरों को, किन आखों से हम देखें।
वे आखें फूट जायें, गर्चे इन आखों से हम देखें॥
जब लगि सीस न सोपिय, तब लगि इश्क न होय।
आशिक मरने ना डरै, पिये प्याला सोय॥

वास्तव में प्रेम प्याला पी लेना हंसी खेल नहीं है, तोता मैना की कहानी नहीं है। यह पिश्ककड़ों का मय प्याला नहीं है। यह चार पैसे या रुपये दो रुपये में नहीं मिलता। आप जानते हैं इसका मूल्य क्या है? यदि नहीं जानते हैं तो मेरे साथ २ भट्टी तक चलिये और पिश्ककड़ों के मुँह से ही सुन लीजिये। देखिये वे क्या कहते हैं–

सीस काटि के भुइंरै, ऊपर राखै पांव।
इश्क चमन के बीच में, ऐसा हो तो आव॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाये॥
नारायण प्रीतम निकट, सोई पहुंचन हार।
गेंद बनावे सीस की, खेलै बीच बजार॥

सुना जनाब! देखिये प्रेम का मूल्य कितना है। हां आपने पूछा कि उस प्रेम-मय की भट्टी तक कैसे पहुंचा जाता है। अजी आसानी तो इसी में है कि किसी पिश्ककड़ को साथी बना लीजिये और बस बेड़ा पार है। यदि आप बिना किसी प्रेम मतवाले के सहारे जाते हैं तो आप को बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा क्योंकि रास्ता बड़ा ही टेढ़ा मेढ़ा है। भूल भुलैयां का तमाशा है और:–

प्रेम पन्थ अतिहि कठिन, सब पै निबहत नाहि।
चढ़ के मोम तुरंग पै, चलिबो पावक माहि॥

यह तो बड़ी ही बेढ़ब और चेतुकी बात है। भला मोम के घोड़े पर सवार हो आग में चलना! भला जो मोम और आग!! भगवन तू ही चाहे तो ऐसा हो सकता है नहीं तो यह प्रेम-प्याला पीना सचमुच बड़ी दिलेरी का काम है।

जो यह प्रेम-प्याला एक बार पी लेता है, अगर सब नहीं तो एकाध घोंट ही लेता है बस वह प्रेम-नशे में झूमने लगता है।

प्रेम दिवाने जो भये, कहें वह कते बैन।
कबहुं मुंह हांसी छुटै, कबहुं टपकै नैन॥

यही उनकी अवस्था हो जाती है। घर द्वार उनको भयानक श्मशान सा प्रतीत होने लगता है, माता पिता विरोधी से दिखाई पड़ने लगते हैं और सगा समन्धी भूत और पिशाचसा प्रतीत होने लगता है। संसार की वस्तुओं में उन्हें तनिक भी आसक्ति नहीं रह जाती और खो उन्हें काटने दौड़ती है। उन्हें किसी की सांसारिक बात अच्छी नहीं लगती। ज्यों २ उनकी दवा कराई जाती है उनका रोग बढ़ता ही जाता है क्योंकि–

प्रेम बान जेहि लागिया, औषध लगत न ताहि।
सिसकि सिसकि मरि मरि जियै, उठै कराहि कराहि॥

कोई कहता है कि इसका दिमाग खराब हो गया है, कोई कहता है इसे हिस्ट्रिया हो गया, कोई कहता है इसे सिर में वेदना है और कोई २ कहते हैं कि यह पागल पन इसकी सरासर बद जाती है। कहला भाई! जिसका जो जी चाहे जोभर कर कह

लो। अपने राम को क्या:-

हूं अलमस्त खबर नहीं तनकी पिया प्रेम प्याला।
ठाठ होऊं तो गिर गिर पड़ता, तेरे रंग मत वाला॥

ऐसी मतवालों के प्रेम भाव का वर्णन करना मुश्किल है। क्योंकि:-

प्रेम मगन जे साधुजन, तिन गति कहीं न जात।
रोय रोय गावत हंसत, कह अटपटी बात॥

अच्छा तो क्या इस प्रेम-प्याले की नशा और नशों के समान उतर भी जाती है या महीने दो महीने, साल दो साल तक बनी रहती है? इस विषय में एक पियक्कड़ की बात सुनिये-

कठिन प्याला प्रेम का, पिये तो हरि के हाथ।
चारों युग माता रहै, उतरै जिये के साथ॥

समझा आपने! यह मामूली नशा नहीं कि उतर जाये, यह तो जीवन के साथ ही उतरता है। लोग प्रश्न करते हैं कि आखिर इतने कठिन परिश्रम से जो वस्तु प्राप्त हो उसमें मज़ा भी है या योंही दुनिया के ऐशो आराम को छोड़ कर प्रेम प्याले की खोज में अपनी जिन्दगी बर्बाद करदें? अजी! अगर मज़ा न होता तो फिर पीते क्यों? ज़रा गौर से सुनिये:-

इसके में मस्त हर एक अपने को नज़र वस आता है।
फिर और हवस रहती न जरा, कुछ ऐसा मज़ा दिखाता है॥

स्वावलम्बन

[ले० श्रीमती सुरजदेवी "प्रभाकर"]

"अपने सहायक आप हो, होगा सहायक प्रभु तभी" प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक जाति अपनी उन्नति चाहती है और अपने आत्मा की उत्कर्षता चाहती है। परन्तु जितनी चाहना है उतना कार्य रूप में परिणत होना नहीं जानती। ८४ लाख योनियों से उन्नति करते २ यह नर शरीर पाया है इसमें भगवान् ने वह शक्ति दी है कि जिससे जीव अपने उच्च से उच्च अत्युत्तम धाम ब्रह्मानन्द को पा सकता है परन्तु साथ ही ईश्वर ने मनुष्य में कमजोरी भी दी है जिनके आश्रय से मनुष्य औंधे मुँह गिरा रहता है और अपने को उठा नहीं सकता उनमें एक यह कमजोरी खास तरह से है कि मनुष्य स्वावलम्बी न बनकर प्रत्येक कार्य के लिये दूसरों के ही प्रयत्न पर निर्भर रहता है। यह ठीक है कि इस असार संसार में हर एक व्यक्ति दूसरों पर निर्भर रहता है और कई कारणों से रहना भी पड़ता है। सामाजिक जीवन में यह स्वाभाविक ही है किन्तु इतने से कोई उन्नति के शिखर पर नहीं चढ़ सकता है। यह तो एक सुविधा मात्र है। वास्तविक उन्नति तो स्वयं हाथ, पाँव, मन, दिमाग और बुद्धि पर जोर डालने से होती है। उत्तम राज सत्ता, उत्तम अधिकार, उत्तम व्यवस्था किसी को उन्नत नहीं बना सकती, व्यावहारिक कर्म तथा आध्यात्मिक कर्म दोनों में मनुष्य को स्वावलम्बन की अति आवश्यकता है। जब तक जीव अपने आपको अच्छी आदतों में न डाले, अपने अन्तःकरण में स्वराज्य स्थापित न करले। इन्द्रियों और इच्छाओं को आत्मा के एक छत्र शासन में न ले आये, तब तक वह अपने जीवन को उच्च नहीं बना सकता। हमारे अधःपतन का यह भी एक बड़ा कारण है कि हमने पूर्णतया जीवन की यथार्थता को नहीं समझा। हमारे पूर्वज ऋषि, मुनि, राजा, महाराजाओं ने अपने आपको उन्नत अवस्था में दिखला कर यह उपदेश दिया है कि नितान्त दूसरों पर निर्भर नहीं होना चाहिये। यह कहावत प्रसिद्ध है। 'स्वयं मरे बिना स्वर्ग नहीं

दीखेगा' शास्त्र में लिखा है कि अपने कर से किया सुकृत अपने मन से किया ध्यान भजन साथ जाता है। और सब यहीं रह जाते हैं। अतः जिन्होंने अपने आपको समझा है, अपने उद्देश्य को समझा है और अपने लक्ष्य पर कृतकृत्य होने का दृढ़ संकल्प किया है उन्होंने अपने जीवन को कठिन तपस्या और निष्काम कर्म का साधन मात्र समझा है। और वे इस कर्म क्षेत्र के रंगमंच पर आगे बढ़ कर अपना प्रभुत्व भी स्थापित कर गये हैं। मनुष्य यदि उत्साह करे अपनी शक्तियों पर खड़ा होने का हौसला करे, तो कितना ही नीचे क्यों न गिरा हो वह फिर को उठ सकता है। मनुष्य को ईश्वर का गुणानुवाद करना चाहिये कि जिसने हमको उच्च से उच्च शिखर पर चढ़ने का साधन भी दिया है अतः हमें अपने जीवन के उद्देश को समझ कर स्वावलम्बी बनकर प्रभु की शरण को प्राप्त हो कर अपनी अन्तिम उन्नति के शिखर पर चढ़ जाना चाहिये।

'त्रिदेव गत विष्णु' और 'भगवान श्री राम'

(तुलसी कृत रामायण)

[ले० श्री महावीर प्रसाद 'बजरंगबली' श्रीवास्तव]

सम्वत् १९८७ के कल्याणों में मार्गशीर्ष पौष तथा वैशाख के अंकों में क्रमशः एक वृहत् लेख 'बाँध गुफा प्रयाग निवासी 'श्रीजयराम दास जी दीन रामायणी का 'रामावतार के विभिन्न हेतु और उनका रहस्य' शीर्षक छपा था, उसके अन्तर्गत उक्त रामायणी जी ने 'त्रिदेवगत विष्णु को भगवान श्रीराम से बिलकुल पृथक् 'देवविशेष मात्र' सूचित किया है. पर यह बात आदर्श ग्रन्थों के सर्व विरुद्ध और पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास जी कृत राम चरित मानस में भी ऐसा अभिप्राय कदापि नहीं है। किसी विशेष बात को लक्ष्य कर के यद्यपि कहीं २ पर तुलसी कृत रामायण में 'त्रिदेव गत विष्णु' के लिये 'भगवान श्री राम' से भेद सूचक वाक्य आ गये हैं, जैसे–

उपजहिं जासु अंश ते नाना। शंभु विरंचि विष्णु भगवाना॥
सुनु सेवक सुरनर सुर धेनु; विधि हरि हर वंदित पदरेनु।
देखे शिव विधि विष्णु अनेका।
अधिक प्रभाव एक ते एका॥
वन्दत चरण करत प्रभु सेवा, विविधि वेष देख सब देवा।
हरि हित सहित सभ जब जोई, रमा समेत रमा पति मोहे,

पर ये सब मार्मिक प्रसंग हैं, इनका यह आशय कदापि नहीं, कि वास्तव में ही 'त्रिदेव गत विष्णु' भगवान न होकर केवल सत्व गुणाभिमानी 'एक देव 'विशेष' हैं। मानस रामायण के ही अनेक स्थलों से त्रिदेवगत विष्णु का भगवान श्रीराम के साथ ऐक्य भी बिलकुल स्पष्ट है। दिग्दर्शन के लिये कुछ प्रसंग दिये जाते हैं।

१ आरण्य कांड में कबन्ध के प्रति श्रीमुख वाक्य हैः–

मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव॥

यहां पर विरंचि और शिव के साथ 'मोहि'

शब्द से त्रिदेव गत विष्णु का ही संकेत है। अर्थात् यहां पर श्रीराम जी अपने श्रीमुख से ही अपने को त्रिदेव गत विष्णु सूचित करते हैं।

२-भगवान् श्रीराम के अवतार शरीर में भृगु पद चिन्ह का वर्णन आया है। जैसे-

उर मणि हार पदिक की शोभा।
विप्र चरण देखत मन लोभा॥

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि यह भृगु पद चिन्ह त्रिदेव गत विष्णु का ही चिन्ह है। 'त्रिदेव में से कौन बड़ा है' इस बात पर ही ऋषियों में विवाद हुआ था। यथा-

सरस्वत्यास्तटे राजन् ऋषयः सत्रमासत।
वितर्कस्समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान्॥

श्रीमद्भागवत स्कंध १० अध्याय ८९

उस समय भृगु के विष्णु भगवान की छाती पर चरण का प्रहार करने पर जब भगवान् विष्णु ने अपनी क्षमा शीलता तथा ब्राह्मण देव होने का अद्भुत परिचय दिया, तब विष्णु भगवान् को ही उन्होंने महान् निश्चित किया! अतएव भगवान श्रीराम के अवतार शरीर में भृगुपद चिन्ह के वर्णन से भी उनसे त्रिदेव गत विष्णु का ऐक्य स्पष्ट है।

३-मानस रामायण के अनेक स्थलों में ब्रह्मा और शिव का भगवान् श्रीराम की माया में मोहित होना कहा गया है पर विष्णु भगवान् के लिये ऐसा नहीं आया। इसमें भी त्रिदेव गतविष्णु का मायाधीश भगवान राम के साथ ऐक्य ही कारण है। यथा-

शिव विरंचि कहं मोहे, कोहे बपुरा आन।
नारद भव विरंचि सनकादी जे मुनिनायक आतम बादी॥
मोहन अन्ध कीन्ह केहि केही को जग काम नचावन जेही॥
यह सब माया कर परिवारा, प्रबल अमित को बरनै पारा॥
शिव चतुरानन जाहि डेरा ही, अपर जीव केहि लेखे मांही॥

४-रावण वध के पश्चात् ब्रह्मा शिव इन्द्र सभी देवताओं ने आकर भगवान् राम की स्तुति की है, पर विष्णु भगवान् का आना, और श्रीराम की स्तुति करना वहां पर नहीं पाया जाता। यदि ब्रह्मादिक के समान विष्णु भगवान भी 'देव विशेष' ही होते, तो उन्हें भी अन्य देवताओं की भांति वहां आ कर भगवान् राम की स्तुति करना चाहिये था, पर ऐसा नहीं है। अतएव इससे भी त्रिदेवगत विष्णु का भगवान राम के साथ ऐक्य ही सिद्ध है।

५-मानस रामायण के प्रारंभ में वन्दना प्रकरण में ब्रह्मा से ले कर समस्त देवता मनुष्य और खलों तक की वन्दना गोस्वामी जी ने की है त्रिदेव में विधि और शिव की स्वतन्त्र वन्दना पाई जाती है यथा:-

वंदौ विधि पद रेणु, भवसागर जिन्ह कीन्ह जहं।
सन्त सुधा शशि धेनु, प्रगटे खल विष वारुणी॥

शिव की वन्दना-

कुन्द इन्दु समदेह, उमारमण करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥

पर क्षीराब्धि नाथ की वन्दना के अतिरिक्त देव विशेष के रूप में त्रिदेव गत विष्णु की वन्दना कहीं नहीं पाई जाती। क्षीराब्धि नाथ की वंदना अवश्य पाई जाती है। यथा-

नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीर सागर शयन॥

अब यदि गोस्वामी जी के मत में क्षीराब्धि नाथ से पृथक् त्रिदेव गत विष्णु कोई दूसरे देव विशेष होते, तो ब्रह्मा और शिव की वन्दना तो स्वतन्त्र रूप से एक २ सोरठा में करते, और उन त्रिदेव में सत्व गुण प्रधान विष्णु की वन्दना ही न करते, यह किसी तरह सम्भव नहीं है। अतएव क्षीराब्धि नाथ ही त्रिदेव गत विष्णु हैं। उनसे

पृथक् त्रिदेव गत विष्णु कोई दूसरे देव विशेष नहीं हैं। और क्षीराब्धि नाथ का भगवान् राम के साथ ऐक्य स्पष्ट ही है।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई।
जहं सिय राम लखन रहे आई॥

६—दो एक विशेष स्थलों को छोड़ कर शेष भी जगह ब्रह्मा और शिव को भगवान् श्रीराम के सेवक सूचित करते हुये विष्णु भगवान् का नाम उनके साथ में नहीं आया। इससे भी त्रिदेव गत विष्णु का भगवान राम के साथ ऐक्य ही सूचित है। यथा—

शिव विरंचि सुर मुनि समुदाई।
चाहत जासु चरण सेवकाई॥ अंगद
शिव विरंचि जेहि सेवहिं, तासन कवन विरोध। मालवंत
कीन्हेउ प्रभु विरोध तेहि देवक।
शिव विरंचि सुरजा के सेवक॥ कुम्भकरण
जेहि नमत शिव ब्रह्मादि।
सुर तिय भजेहु ना करुणामयं॥ मन्दोदरी
ब्रह्मादि शंकर सेव्य राम नमामि करुणा कोमलं॥ इन्द्र
भव कुशल पद पंकज विलोकि विरंचि शंकर सेव्यजे। निषादराज
जे चरण शिव अज पूज्य रज शुभ परसिमुनि पत्नीतरी। वेदस्तुति
चरण कमल वंदित अज शंकर। सनकादि
शिव अज चरण रघुराई॥ काग भुशुंडि
रामहिं भजहिं तात शिव धाता। विप्र (उत्तरकांड)

उपरोक्त प्रमाणों में ब्रह्मा और शिव को ही श्रीराम का सेवक कहा है। ब्रह्मा और शिव के साथ विष्णु को नहीं सम्मिलित किया।

इस प्रकार अब मानस के ही अनेक प्रसंगों से त्रिदेव गत विष्णु का भगवान् श्रीराम के साथ ऐक्य सिद्ध है, और समस्त वैष्णव समाज ऐसा ही मानता है। समस्त आर्ष ग्रंथों से त्रिदेव गत विष्णु का स्वयं भगवान् होना सिद्ध है। और वैष्णव समाज ही नहीं, किन्तु पंच देवो पासक स्मार्त लोग भी त्रिदेव गत विष्णु को परमात्मा के सगुण रूप मानते हैं। तब केवल कुछ भेद सूचक चौपाईयों को देख, उनके सम्बन्ध में रहस्य का खोज न करके, भगवान् के अंश गुणावतार त्रिदेव गत विष्णु को, उनसे पृथक् देव विशेष बताना बहुत बड़ी भूल है, और विशेष कर वैष्णव समाज के तो बिल्कुल ही विपरीत है। सारांश यह कि जिस प्रकार मत्स्य-कूर्म बाराह आदि दशावतारों का भगवान् श्रीराम के साथ स्वरूपतः ऐक्य है, उसी प्रकार अंश गुणावतार त्रिदेव गत विष्णु का भी उनके साथ स्वरूपतः ऐक्य है।

अब तुलसीकृत रामायण के जिन स्थलों पर एकायक दृष्टि पड़ने से मोटी दृष्टि से त्रिदेव गत विष्णु भगवान श्री राम से पृथक् 'केवल देव विशेष' सूचित होते हैं, उन स्थलों पर पृथक् पृथक विस्तृत विचार तो फिर किसी समय अवसर पाने पर किया जायगा, पर इस समय पाठकों के सन्तोष के लिये एक बात ही समाधान के लिये दी जाती है यद्यपि स्वरूप से त्रिदेव गत विष्णु स्वयं भगवान् हैं पर तो भी वे इस रूप से अपनी सृष्टि साम्राज्य के एक पद अर्थात् 'अधिकार विशेष पर आरूढ़ हैं अतएव कहीं २ पर श्रीराम परत्व में प्रसंगात् कुछ विशेष भावों के सूचनार्थ-त्रिदेव गत विष्णु का संकेत् उनके उस 'त्रिदेवगत अधिकार' के अनुसार ही किया गया है, जिस पर कि वे आरूढ़ हैं। उनके स्वरूप की ओर लक्ष्य कर के वहाँ वाक्य नहीं कहे गये। इसलिये उन स्थलों के वचनों से त्रिदेव गत विष्णु भगवान् श्रीराम से पृथक् केवल देव विशेष जैसे सूचित होते हैं पर वास्तव में वे सब धार्मिक प्रसंग हैं। इसके अतिरिक्त रामायण जी में सर्वत्र ही जो वचन 'त्रिदेव गत विष्णु'

के स्वरूप की ओर लक्ष्य करके कहे गये हैं, उनमें उनका 'भगवान श्रीराम' से बराबर ऐक्य ही पाया जाता है। श्रीवाल्मीकि रामायण उत्तर कांड से, 'परात्पर भगवान् श्रीराम ही अपने अंश गुणावतार से त्रिदेव गत विष्णु हुये हैं', यह बात बिल्कुल स्पष्ट है।

वाल्मीकि रामायण उत्तर कांड में तपस्वी रूप काल ब्रह्माजी का संदेशा लेकर भगवान्‌श्रीराम के पास आया है। उस समय ब्रह्मा जी का संदेशा कहते हुये ब्रह्मा जी की ओर से निम्नलिखित वचन पाये जाते हैं।

> पद्मे दिव्यर्क संकाशे नाभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
> प्राजा पत्यं त्वया कर्म मयि सर्वन्निवेशितम् ॥
> सोऽहं सन्यस्त भारोहि त्वामुपास्य जगत्पतम् ।
> रक्षां विधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करो भवान् ॥
> ततस्त्वमसि दुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् ।
> रक्षां विधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥

अर्थ—हे प्रभो! अपनी नाभि से दिव्य सूर्य्य के समान प्रकाशमान् कमल को उत्पन्न करके और उस कमल से मुझे उत्पन्न करके सृष्टि कार्य्य का भार आपने मेरे ऊपर छोड़ा तब जगत्पति आप की उपासना करके आप से मैंने प्रार्थना की, कि प्रभो मेरे सृष्टि किये हुये जीवों की रक्षा (पालन) का विधान आप ही कीजिये। इस कार्य्य में आप ही समर्थ हैं क्योंकि मुझे भी तेज प्रदान करने वाले आप ही हैं। तब मेरी प्रार्थना को सुन कर आप स्वयं दुर्धर्ष सनातन भाव से जीवों की रक्षा (पालन) करने के लिये 'विष्णुत्व' को प्राप्त हुये अर्थात् त्रिदेव गत विष्णु के पद को ग्रहण किया। इस प्रकार 'भगवान श्रीराम या पर विष्णु' के ही अंश गुणावतार त्रिदेव गत विष्णु हैं। इस प्रकार जैसे मत्स्य-कूर्म-वाराह आदि अंशावतारों का 'भगवान श्रीराम या पर विष्णु' से स्वरूपतः ऐक्य है, वैसे ही अंश गुणावतार त्रिदेव गत विष्णु का भी उनसे स्वरूपतः ऐक्य है। उनको 'भगवान् श्रीराम या पर विष्णु' से पृथक् देव विशेष (जीव) बताना आर्ष ग्रन्थों तथा चतुःसंप्रदाय के वैष्णवों के सर्वथा विरुद्ध है।

अभिलाषा

(रचयिता श्रीमती व्रजकुमारी "प्रभाकर)

त्रोटक (छन्द)

भव भीत हरैं नव भांति भरैं,
प्रभु प्रीति पदाम्बुज में विचरैं।
पर तारक स्वारथ को न चरैं,
उपकार रती उरमें सचरैं।
दया शीश सुशोभम सेस सदा,
पद प्रेम परावृत प्राण मुदा।
प्रिय आतम का उत्सर्ग सदा,
शत खंड करें तनु प्राण मुदा।
जन आरत भारत भार हरैं,
प्रण पारथ सारथ पार करैं।
"व्रज" तेज दयायुत शौर्य कढ़े,
जन आश्रम के युग श्रेय लढ़े।

युग-दोनों, युगयुगान्तर——सचरैं-संचार

मोक्ष का ईश्वर भक्ति ही सर्वोपरी साधन है।

[ले० श्री स्वामी आत्मानंद जी]

ईश्वर सर्वत्र व्यापक है सर्व व्यापक होने से ही सब का पूजनीय है जिसका किसी काल में किसी देश में, किसी वस्तु में अभाव न पाया जाय उसीको व्यापक जानो।

देह धरे का यह फल भाई भजियराम सब काम विहाई।
का चिन्ता मम जीव ने यदि हरि विश्वंभरो गीयते ॥
नोचेदर्भक जीवनाय जननी कथं स्तन्यं निस्सरेत् ॥
इत्या लोच्य मुहुर्मुहु यदुपते लक्ष्मी पते केवलम्।
त्वत पादाम्बुज सेवनेन सततं कालोमया नीयते।

प्रिय भक्त गणो! सर्व कुतर्कों को त्याग ईश्वर परायण होना चाहिये जीवन का किञ्चित् भी भरोसा मत करो। जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ मैंढुक मच्छर खाने की इच्छा करता है तैसे ही नीच पुरुष भोग की इच्छा करते हैं। भक्तों को इस प्रकार इच्छा करना सर्वथा त्याज्य है।

शरीर की शुद्धिमें ही सर्व समय को निकाल देना यही भक्तों को उचित नहीं है। हां मन के शुद्ध रखने के लिये पवित्र रहना चाहिये। अत्याचार नहीं करना चाहिये और अनाचार से भी न रहना चाहिये।

जैसे मूत्र की बनी हुई बरफ जल से शुद्ध नहीं हो सकती तैसे ही अशुद्ध वस्तु से बना हुआ शरीर कभी शुद्ध नहीं हो सकता।

बहुत पढ़ने से भी इस अल्प आयु जीव का इस असार दुःखागार संसार से छुटकारा नहीं हो सकता। इसमें शास्त्र प्रमाण है।

अनंत पारं किल शब्द शास्त्र स्वल्पं तथायु बहुवश्चविघ्नाः।
सारंततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसै यथा क्षीर मम्बु मध्यात॥

यदि कोई कहे ज्ञान से मोक्ष होता है तो यह बात सत्य है इसमें सन्देह नहीं परन्तु वैराग्य बिना ज्ञान नहीं होता "ज्ञान कि होय विराग विनु" इसलिये जिनको वैराग्य नहीं है उनको एक मात्र ईश्वर भक्ति ही मोक्ष का सुगम उपाय है। ईश्वर हमारी अनन्य भक्ति से जब प्रसन्न होगा तब समस्त साधन मिला देगा कि जिससे हम मोक्ष भागी होवें। वह अन्तर्यामी है हमारे सब कर्तव्य को जानता है परन्तु कुछ कहता नहीं केवल दृष्टा उदासीनवत् योद्धा साक्षी है इसी कारण से क्लेश कर्म के विपाक से बन्धायमान नहीं होता इसी भाव में हम को भी स्थित करना चाहिये फिर हम भी व्यवहार करते हुए भी कर्मों से बन्धायमान नहीं होंगे। परन्तु इसमें ईश्वर भक्ति ही मुख्य उपाय है अन्यथा नहीं। इसलिये ईश्वर भक्ति के लिये कटिबद्ध हो जाओ।

मनही संसार है

[ले० श्रीमती सूरजदेवी "प्रभाकर"]

विचार करने से यही प्रतीत होता है कि मन ही संसार है मन ही दुःख है मन ही सुख है मन ही लाभ है मन ही हानी है अर्थात् संपूर्ण संसारिक द्वन्द मन के ही आधार हैं वास्तव में तो संसार स्वप्न सदृश है, किसी को मिष्टान्न प्रिय होता है तो किसी को कटुपदार्थ प्रिय होता है किसी को स्त्री प्रिय होती है तो किसी का पुत्र में अति स्नेह होता है कोई धन में आसक्त होता है तो कोई बड़-पन या प्रतिष्ठा में ही अपनी उन्नति समझता है अतएव लिखने का तात्पर्य यही है कि संसारिक पदार्थों में किसीको कोई पदार्थ प्रिय होता है तो वही

पदार्थ दूसरे को अप्रिय भासता है परन्तु खोज करने से संसार में कहीं भी प्रियता यानी आनन्द नहीं मिलता है, मिलेगा कहां से संसार में अर्थात् पदार्थों में आनन्द का केवल नाम मात्र है वास्तविक आनन्द नहीं है यदि स्त्री में आनन्द होवे तो एक मनुष्य की आखों के पाटी बान्ध दी जाय फिर उसके सामने स्त्री को खड़ी कर देवे तब क्या उस मनुष्य को स्त्री द्वारा आनन्द हो सकता है। कदापि नहीं स्त्री में आनन्द है ही कहाँ यह तो केवल मन की मानी हुई है। इसी प्रकार और भी सम्पूर्ण पदार्थों में विचार करना चाहिये कि मन जिस को अच्छा समझ लेता है वही अच्छा लगता है। और सब कुछ मन पर ही निर्भर है। एक आदमी के सन्तान नहीं हुई इससे वह अपने को निपुत्रा समझता है पर वही जब अपने छोटे भाई का कुछ दिनों बाद दत्तक पुत्र बना लेता है उस दिन से अपने को पुत्रवान समझने लगता है और जिसको पहले भतीजा समझता था उसी को पुत्र मानने लगता है। इससे यही सिद्ध होता है कि मन का माना हुआ ही संसार है जैसे एक कोई आदमी का सुआ (तोता) मर गया था तो वह तोते को रोने लगा इतने में एक महात्मा आ गया और उस रोने वाले से महात्मा ने पूछा कि भाई क्यों रोता है। उसने कहा कि मेरा तोता मर गया। तब महात्मा ने कहा कि भाई तोते के लिये इतना रोना कैसे? फिर उसने जवाब दिया कि रोऊं कैसे नहीं वह तोता मेरे घर में रहता था मेरा अन्न खाता था दिन भर बोलता था इसलिये वह मुझे याद आता है। महात्मा ने समझाया कि भाई तेरे घर में केवल तोता पक्षी ही रहता था क्या और कोई पक्षी तेरे घर में नहीं आते हैं तेरे घर में तो चूहे भी बहुत हैं, वे तेरा ही अन्न खाते हैं उनके लिये भी तुझे हर्ष और शोक करना चाहिये अन्यथा क्यों रोता है विचार कर दृश्य पदार्थ नाशवान है उक्त दृष्टान्त का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि मन का ही खेल है वह मनुष्य ने उस तोते को अपना मान रक्खा था। इसलिये वह तोते के लिये व्याकुल होता था। इसी विषय पर कुछ श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्द के श्लोक, उद्धृत करके लिखे जाते हैं "भिक्षुक का गाया हुआ गीत"

नायं जनो मे सुख दुःख हेतु,
नं देवतात्मा ग्रह कर्म कालाः।
मनः परं कारण मामनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेद्यत ॥
मनो गुणान्वै सृजते बलीय स्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ॥
शुक्लानि कृष्णन्यथ लोहितानी तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति।
अनीह आत्मा मनसा समीहत हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ॥
मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुण संग तो सौ।
दानंस्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि चसद्व्रतानि ॥
सर्वे मनो निग्रह लक्षणांताः परोहि योगो मनसः समाधिः
समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किंवत तस्य कृत्यम्।
असंयतं यस्य मनो विनश्येद्दानादिभिश्चेद् परं किमेभिः ॥
मनो वशेऽन्ये ह्य भवं स्मदेवा मनश्च नान्यस्यवशं समेति।
भीष्मो हि देव सहसः सहीयान् युंज्या द्वशेतं सहि देवदेव
तंदुर्जयं शत्रु मसह्यवेग मरुंतु दंतन्न विजित्य केचित्।
कुर्वन्त्य सद्विग्रह मत्र मर्त्यैं मित्राण्यु दासीन रिपून्वि मूढाः ॥
देहं मनो मात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यं धधि यो मनुष्याः।
एषोऽहमन्योऽमिति भ्रमेण दुरन्त पारे तमसि भ्रमन्ति ॥

अर्थ—अहा यह सब लोक देवता आत्मा ग्रह कर्म वा काल यह मेरे सुख दुःखों में कारण नहीं है किन्तु जो संसार चक्र को फिराता है वह मन ही केवल सुख दुःखों का कारण है।

वह अति बलवान मन पहले गुणों की वृत्ति को उत्पन्न करता है तब गुणों से सात्विक राजस और तामस ऐसे भिन्न भिन्न कर्म उत्पन्न होते हैं।

और फिर उन कर्मों से उन कर्मों के अनुसार देव-तिर्यक् मनुष्य आदि जन्म प्राप्त होते हैं इस प्रकार मन संसार चक्र को फिराता है।

सङ्कल्प विकल्प करने वाले मन के साथ नियन्ता रूप से रहने वाला भी मुझ जीवात्मा का सखा परमात्मा विद्या शक्ति प्रधान होने के कारण अहंता ममता रहित होकर लुप्त न हुये ज्ञानसे केवल जीवको आत्मरूप से स्वीकार करके उसके सत्वादि गुणों की सङ्गती से विषयों का सेवन करता हुआ बूढा होगया अर्थात आत्मा को यह संसार अविद्या के अध्यास से ही हुआ है स्वयं नहीं हुआ है क्योंकि अध्यास रहित ईश्वर को तो सर्वथा संसार ही है नहीं किन्तु अध्यास युक्त जीव कोही है ॥ ३ ॥

इससे मनका निग्रह करने पर सब कुछ करा हुआ सा होजाता है नहीं तो सर्व व्यर्थ है दान नित्य नैमित्तिक स्वधर्म नियम यम एकादशी आदि-व्रत शास्त्र पढना और दूसरे भी जितने साधन हैं सबही उपाय मनोनिग्रह का ही अवलम्बन करके रहते हैं अतः मनका निग्रह होना ही ज्ञानका परम साधन है ॥ ४ ॥

इससे जिस पुरुष का मन शान्त है और वश में हुआ है उसको दानादि कार्यों का क्या करना है कहो और जिसका मन वश में न होकर लटक रहा है उसको इन दानादिकों से दूसरा कौनसा फल प्राप्त होना है ॥ ५ ॥

अन्य इन्द्रियों के देवता मनके वश में हैं परंतु मन किसि दुसरी इन्द्रिय की अधिष्ठता देवता के वश में होकर नहीं रहता है मन बलवानों से भी अधिक बलवान है और योगियों को भी भय देने वाला देवता है इस कारण जो पुरुष उसको अपने वश में करेगा वही देवताओं का भी देवत होगा दुसरा कोइ नहीं होगा ॥ ६ ॥

इसकारण जिसके राग लोभादि वेग असह्य हैं जो मर्म भेदी है तिस मनो रूप दुर्जय शत्रु को जीते बिना, कितने ही मूर्ख पुरुष इस संसार में दुसरे कितने ही मनुष्यों के साथ में व्यर्थ वैर करते हैं और मनुष्यों मे ही मित्र उदासीन और शत्रु यह धर्म मानते हैं ॥ ७ ॥

केवल मनके कल्पना मात्र करे हुये इस सरीर को "यह मैं हूं" ऐसी बुद्धि से और सुत्रादि देहों को "मेरे हैं" ऐसी बुद्धि से स्वीकार करके अन्ध बुद्धि हुये कितने ही मनुष्य यह मैं हूं यह दुसरा है ऐसे भ्रम से अन्तपार रहित संसार रूप अन्धकार (मय कूप में) भ्रमते हैं ॥ ८ ॥

मनको वशमें करने से ही संसार से छुटकारा हो सकता है इसलिये मनको वश में करने की शीघ्र चेष्टा करनी चाहिये मन को वश में करने का श्रीकृष्ण देवने मुख्य साधन अभ्यास ही बताया है पर अभ्यास भी दिखाने से काम नहीं चलता है जैसे गीता अ० १२ श्लोक १२ में ज्ञान ध्यान त्याग सहित बताया है उसी प्रकार का अभ्यास बहुत शीघ्र लाभदायक होता है इति

सेठ मेलाराम के सात प्रश्नों का उत्तर

[ले० श्री ईश्वरीदत्त पांडे]

आज तो सात प्रश्न सतसंग प्राप्त हुए, यद्यपि उनका सर्वोत्तम उत्तर तो मौन ही है, परन्तु बिना कहे वह भी सिद्ध नहीं होता इसलिये कहते सुनते ही चले आये हैं। हम जैसे नगण्य व्यक्तियों का कुछ लिखना ढिठाई करना भानू ही होगा वेदान्त का सिद्धान्त जैसा अपने को गुरु

कृपा, शास्त्र कृपा ईश्वर कृपा या आत्म कृपा द्वारा हृदयङ्गम हुआ है वह "अद्वैत तत्व है" जब तक जिज्ञासा रहती है जिज्ञासा के निमित विचार सत-जारी रहता है उसमें अनेकानेक अनूठी युक्तियां सूझती रहती हैं अनेक प्रकार के चमत्कारों का दिग्दर्शन भी होता रहता है जब यह पहेली हल हो जाती है तो चित शान्त हो जाता है व्यवहार को चाहे जो दशा हो, फिर अच्छे से अच्छा प्रमाण उत्तम से उत्तम युक्ति भी तुच्छ और हेय भासती है। दूसरों के प्रति ईश्वर को सिद्ध कर दिखाने से अपने को जो बड़ा गौरव सा प्रतीत होता था, अब उस पर केवल हंसी आती है।

ईश्वर स्वतः सिद्ध है सब प्रमाण और युक्तियां उसी से सिद्ध होती हैं प्रमाण और युक्तियां उसे क्या सिद्ध कर सकी हैं। यदि प्रमाणों और युक्तियों द्वारा ईश्वर सिद्ध होते तो फिर ईश्वर से ज्यादा महत्व प्रमाणों और युक्तियों को देना होगा और जिसकी युक्ति प्रबल होगी वह अपनी ही समझ का ईश्वर सिद्ध करेगा और वह मनुष्यों का सिद्ध किया हुआ ईश्वर मनुष्यों के हाथ का खिलौना होगा। ईश्वर के प्रति ऐसा प्रश्न करना नहीं बनता कि उसका क्या रूप है। क्योंकि आस्तिक मात्र उसे देश, काल, परिच्छेद से रहित मानते हैं। ऐसा प्रश्न परिच्छिन्न वस्तु के लिए ही हो सकता है। "ईश्वर क्या है?" इसका उत्तर यही हो सका है कि "क्या नहीं है?"

यद्यपि शास्त्रों में जिज्ञासुओं को प्रबुद्ध करने के लिए अनेक प्रकार से उत्पत्ति वर्णन की है परन्तु उनका प्रयोजन उत्पत्ति कथन करने में नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त काल में वही फिर उसका निषेध करते हैं उस समय संसार की स्थिति इस प्रकार हृदयङ्गम कराई जाती है जिससे जिज्ञासु के चित से यह भ्रान्ति दूर हो जाय और सहज स्थिति प्राप्त हो।

जैसे मणिका प्रकाश मणि का ही चमत्कार है और उससे भिन्न उसकी कुछ सत्ता नहीं है, इसी प्रकार यह संसार परमतत्व का ही चमत्कार है उससे भिन्न इसकी कुछ सत्ता नहीं इसलिए सत्य नहीं [वास्तविक सत्य परमतत्व है।] और भासता है इसलिए मिथ्या नहीं कहा जा सका इसलिए इसको अनिर्वचनीय कहा है यानि निर्वचन कुछ नहीं किया जासका सत्य मिथ्या दोनों से इसका विलक्षण है।

जन साधारण अपने शरीर को ही अपना आप मानते हैं। यद्यपि बोल चाल में वह इसके विपरीत सिद्ध करते रहते हैं जैसे मेरा शरीर कहने से शरीर वाला शरीर से भिन्न सिद्ध होता है अन्यथा ऐसा कथन ही नहीं हो सका परन्तु उनका निश्चय शरीर में ही होता है शरीर परिच्छिन्न होने से उनका अपना बन्ध भासता है, तब वह मुक्ति के लिए प्रयत्न शील होते हैं जब गुरु शास्त्र द्वारा यथार्थ बोध प्राप्त होता है तो ऐसा निश्चय होता है कि बन्ध कभी था ही नहीं जब बन्ध ही नहीं तो फिर मुक्ति कैसी।

या दूसरी प्रकार से आस्तिक के लिए ईश्वर परायण हो कर इस प्रकार देखना ही कि संसार क्या है गोया अनेक प्रकार से ईश्वर ही अपने को सिद्ध कर रहा है। (प्रत्यक्ष क्या कहा है) सब प्रकार से शान्ति का कारण है फिर उसके लिए नास्तिक नाम से कोई नहीं बच रहता जिसे आस्तिक बनाया जाय इन सातों प्रश्नों का उत्तर भी यहाँ हल हो जाता है बल्कि कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

अपने उन पूर्वले कर्मों का नाम ही भाग्य है

जो सर्व सञ्चित कर्मों में प्रबल होने से सर्व कर्मों को पीछे छोड़ कर प्रथम फल देने को प्रस्तुत हुए हैं और उनके फलीभूत होने का कारण उनमें अपना अहंकार ही है स्वतः कर्म कुछ नहीं करते।

यह लोक परलोक अपनी भावना के अनुसार ही भासता है भिन्न पारमार्थिक सत्ता इनकी कुछ नहीं इनकी क्या किसी वस्तु की नहीं।

अनादि काल से जो कर्म प्रवाह चला आ रहा है वह कार्य कारण सम्बन्ध से बन्धासा प्रतीत होता है। परन्तु शक्ति बिना कर्म नहीं होता और एक शक्ति दूसरी से, दूसरी तीसरी से संचालित होती भासती है और सब के अन्त में एक ऐसी शक्ति का होना अवश्यम्भावी है जो स्वक्रियात्मक हो ऐसा माने बिना जिज्ञासा की शान्ति नहीं होती और इस स्वक्रियात्मक शक्ति को चैतन्य के सिवाय और क्या कहा जासका है।

महिमा का अन्त नहीं चाहे अहर्निश कथन करिये इसलिये कथा की भी समाप्ति नहीं और यही अनन्त कथा है।

परमात्मतत्व या परमतत्व दो नहीं हो सकते क्योंकि दो होने ही से सीमा निर्धारित हो जाती है ऐसे परम तत्व से जहां दूसरा कोई नहीं उत्पत्ति कैसे कहिये यदि कहा जाय कि फिर दीखता क्या है? तो जो है वही दीखता है अन्त तो कुछ नहीं हुआ।

गुरू के प्रति शिष्य का भाव

[ले० श्री महात्मा राम

'यस्य देवे परा भक्ति, र्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था, प्रकाश्यन्ते महात्मनः ॥

जिस पुरुष की परमात्मा देव में जैसे परं भक्ति है वैसी ही परं भक्ति जब श्रीगुरु देव में उत्पन्न होगी तभी उस अधिकारी के हृदय में कथन किया हुआ गुरु का उपदेश प्रकाशित होगा।

'यथा गुरुस्तथैं वेशो, यथैवेशः तथा गुरुः।
पूजनीयौ सदा भक्त्या, न भेदो विद्यतेऽनयोः ॥'

जैसा भाव गुरु में रखता है वैसा ही भगवान में रखना चाहिये और जैसा भाव भगवान् में रखता है वैसा भाव ही गुरु में रखना चाहिये इन दोनों में भेद भाव न रख कर परं भक्ति से पूजने चाहिये।

'ततः पुण्य वशात्सिद्धि, गुरुणा सह संगतः।
यस्मिंद्दार मार्गेण, जायते त्वरितं फलम् ॥'

श्रद्धा भक्ति से पूजित हुए गुरु की कृपा से तथा भगवद्भक्ति रूप पुण्य के प्रभाव से गुरु सेवा करने वाले अधिकारी शिष्य को शीघ्र ही तत्वज्ञान के फल की सिद्धि होती है।

'गुरु भक्ति सदा कुर्यात्, श्रेयसे भूयसे नरः।
गुरुदेवं हरि साक्षात्, नान्यः इत्यब्रुवन्श्रुतिः' ॥

यह अधिकारी पुरुष अपने कल्याण की सिद्धि के लिये सदा ही गुरु की भक्ति करे क्योंकि कल्याण स्वरूप जो हरि भगवान् हैं वे ही साक्षात् गुरु मूर्ति को धारण करके शिष्य का कल्याण करते हैं गुरु देव से अन्य कोई भगवान् नहीं है इस प्रकार वेद में कथन किया है।

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो सदा च्युत।
न गुरोरधिकं कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते' ॥

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही शिव रूप है और गुरु ही विष्णु है सद्गुरुदेव जो परं ब्रह्म स्वरूप सदा अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए ब्रह्मा विष्णु और शिव रूप को धारण करके जगत् की उत्पत्ती पालन, तथा संहार करते हैं, इसलिये गुरु से अधिक कोई भी पदार्थ तीनों लोकों में विद्यमान नहीं है।

'गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढ़ चेतनः ।
सयाति निष्फलं वंहि, स्वप्न लब्धं यथा धनम् ॥

जो मूढ़ बुद्धि नष्ट चित्त वाला पुरुष गुरु को प्राप्त हो कर भी गुरु सेवा के बिना अपनी इच्छा पूर्वक चाहे जिस कर्म को करता है वह सब कर्म निष्फल हो जाता है, जैसे स्वप्न में प्राप्त हुआ धन किसी प्रयोजन का साधक नहीं होता ऐसे अशिष्ट पुरुष का कल्याण नहीं होता ।

'ब्रह्मा विष्णु महेशानि, देवता मुनी योगिनः ।
कुर्वंति अनुग्रह तुष्टाः, गुरौ तुष्टा न संशयः' ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवता मुनीश्वर और योगी जन उसी पुरुष पर अनुग्रह करते हैं जिस पर गुरु प्रसन्न होते हैं ।

'शिवे रूष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रूष्टे न कश्चनः ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेनः गुरुमेव समाश्रयेत' ॥

भगवान् के रूष्ट हो जाने पर तो गुरु शिष्य की रक्षा कर सके हैं, परन्तु गुरुदेव के रूष्ट होने पर त्रिलोकी में कोई भी रक्षक नहीं हो सकता । इसलिये सर्व प्रकार के प्रयत्नों से गुरु को प्रसन्न रखना चाहिये ।

दो०—'हरि रूठे कुछ डर नहीं, तू भी दे छिटकाय ।
गुरु को राखो शीश पर, सब विधि करैं सहाय ॥

'राम तजौं पै गुरु न बिसारूं,
गुरु कंसम हरि को न निहारूं ।'

'हरि नै जनम दीयो जग माहीं,
गुरु नै आवा गमन छुड़ाहीं ॥'

'हरि नै पांच चारि दीये साथा,
गुरु नै लई छुड़ाय अनाथा ।'

'हरि नै कुटम जाल में गेरी,
गुरु ने काटी ममता बेरी' ॥

'हरि ने मौसे आप छिपायो,
गुरु दीपक दे ताहि दिखायो' ॥

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पांव ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया मिलाय' ॥

'ईश्वर तें गुरु में अधिक धारै भक्ति सुजान ।
बिन गुरु भक्ति प्रवीन हूं लहै न आत्म ज्ञान' ॥

'वेद उदधि बिन गुरु लखै लागै लौन समान ।
बादर गुरु मुख द्वार है अमृत से अधिकान' ॥

जैसे समुद्र का जल सर्वथा खारा होता है परन्तु वही जल जब बादलों द्वारा वर्षता तब मीठा हो जाता है इसी प्रकार बिना योग्य गुरु के स्वयं पढ़ा हुआ वेद का अर्थ लवन के समान ही लगता है अर्थात् बिना गुरू के वेद का यथार्थ अर्थ ग्रहण न होकर अनर्थ ही होता है और यथार्थ ज्ञाता गुरू द्वारा पढ़ा हुआ वेद का अर्थ अमृत के समान आनन्द देने वाला होता है । इसलिये स्वयं अथवा दूसरे अनाभिज्ञों द्वारा वेद को नहीं पढ़ना चाहिए। किन्तु यथार्थ वेद के अर्थ को जानने वाले, आचार्य द्वारा वेद पढ़ना चाहिये ।

'ब्रह्म रूप, अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥
वाणी ताकी वेद सम, कीजै ताकी सेव ।
है प्रसन्न जब सवतै, तब जानै निज भेव ॥'

'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' जो पुरुष ब्रह्म का जानने वाला है वह ब्रह्म का स्वरूप ही होता है उसकी वाणी साक्षात्वेद रूप ही है, वह चाहे संस्कृत में हो चाहे भाषा में ही सर्वथा अधिकारी जनों के भ्रम को नष्ट करती है । इसलिये ऐसे गुरुओं की सेवा करने से जब गुरु प्रसन्न हो जावें तब उनकी कृपा से अपने आत्म स्वरूप को शिष्य जानता है।

'गुरु समीप पुनि करिये वासा ।
जो अति उत्कट है जिज्ञासा ॥
मन तन धन वच अर्पी देवै ।
जो चाहे दिढ बन्धन छेवै ॥

तन करि बहु सेवा विस्तारै।
आज्ञा गुरु की कबहु न टारै॥
मन में प्रेम राम सम राखै।
है प्रसन्न गुरु इमि अभिलाषै॥
दोष दृष्टि स्वप्ने नहिं आनै।
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै॥
गुरु मूरति को हिय में ध्याना॥
धारै जो चाहे कल्याणा'॥

'जो चाहे कल्याण, तन मन धन वच अर्पि इमि।
बसै बहुत गुरु स्थान, भिक्षा से जीवन करै'॥
'गुरु मूल क्रिया सर्वा, लोकेऽस्मिन्कुल नायके।
तस्मा त्सेव्यो गुरुर्नित्यं मोक्षार्थी भक्ति संयुतैः'॥

इस संसार चक्कर के प्रवर्तक जो श्री गुरु हैं वोही सर्व लौकिक और वैदिक क्रियाओं के मूल कारण हैं इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले शिष्य ने भक्ति भाव सहित हो कर श्रीगुरु देव की सेवा करनी चाहिये।

'ध्यान मूलं गुरो मूर्ति, पूजा मूलं गुरोः चरण।
ज्ञान मूलं गुरोर्वाक्य, मोक्ष मूलं गुरो कृपा'॥

सर्व ध्यानों का मूल गुरु मूर्ति का ध्यान है तथा सब पूजाओं का मूल गुरु के चरणों की पूजा है तथा सर्व ज्ञानों का मूल गुरु का वाक्य है। और मोक्ष का मूल कारण गुरु की कृपा है।

'न गुरो रधिकं तत्वं, न गुरो रधिकं तपः।
तत्व ज्ञाना त्परं नास्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥'
'कर्णधारं गुरुंप्राप्य, तद्वाक्य प्लव दृढम्।
अभ्यास वासनात्यक्त्या, तरंति भव सागरम्'॥

संसार रूपी सागर से पार उतारने वाले गुरु रूप मल्लाह को प्राप्त हो कर उनके वाक्य रूप दृढ़ नौका में बैठ कर अभ्यास रूप प्रयत्न और वासना को त्याग कर मुमुक्षु जन भव सागर को पार कर देते हैं।

'तावदार्तो भयं दुःखं, मोहश्चाशु भमापदः।
यावन्नयति शरणं, श्रीगुरु भक्ति वत्सलम्'॥

तब तक ही जीव दुःखी और आर्त तथा—

तब तक ही यह जीवात्मा महा दीन दुःखी भय युक्त मोह और अनेक आपत्तियों से घिरा रहता है जब तक भक्त वत्सल श्रीगुरु देव के शरण को नहीं प्राप्त होता।

'विजन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरण सेवया।
ते वै संन्यासि नः प्रोक्ता, इतरे भेष धारिणः'॥

जिन्होंने गुरु चरणों की सेवा कर के महा-वाक्यों के अर्थ को संम्यक् प्रकार जाना है उन्हीं का नाम संन्यासी है बाकी तो केवल भेष मात्र के संन्यासी हैं।

'न पुत्राय प्रदातव्यं, न शिष्या कदाचनः।
गुरु देवाय भक्ताय, निज मुक्ति परायच'॥

वेद में लिखा है कि जो पुरुष पुत्र भाव से वा शिष्य भाव से रहित है उसको गुरु ने कदाचित भी उपदेश नहीं करना किन्तु जो अधिकारी पुरुष गुरु भक्त और मुक्ति परायण है उसी के प्रति ज्ञानो-पदेश करना।

कृष्ण से

[ले० श्री "साहित्यरत्न" पं० बाबूलाल भार्गव]

गज अरु गीध तारे, व्याध कोल-भील तारे,
तारे कपि अंगद, सुग्रीव बालि तारे हैं।
तन-सुधि भूलि भूलि, दौरि दौरि आये "कीर्ति"
संकट सदैव निज भक्तन के टारे हैं॥
सुनत अजौलों रहौं—आये बिन टेरे आप,
आवत ही क्लेश-पाश काटि काटि डारे हैं।
आन बिसराय कान्ह! कान मूंदि बैठे कहां?
हमतो तुम्हें हे नाथ! टेरि टेरि हारे हैं॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

६४१. विराट समस्त लोकों का एक रूप मात्र है। इसको विराट पुरुष भी कहते हैं। विराट रूपी पुरुष के अन्तर्गत पत्थर वृक्ष, पानी हवा आदि सब आजाते हैं। इसके सात अङ्ग हैं और १९ मुख हैं। सात अंग यह हैं। शिर में ज्योतिर्मय चक्र, सूर्य अर्थात् आंखें, पवन अर्थात् समस्त दिशाओं में घूमने वाला प्राण। मध्य स्थान आकाश, मूत्राशय जल, पाद पृथ्वी, मुख अग्नि। विराट का ध्यान करने के लिए यह उत्तम साधन है। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण, बुद्धि चित्त और अहंकार यह इसके उन्नीस मुख हैं।

६४२. कहते हैं कि एक बार राम नाम उच्चारण करने से मनुष्य के समस्त पाप नाश हो जाते हैं परन्तु यह उसी समय सम्भव है जब कि श्रद्धा भक्ति और शुद्ध हृदय से एकाग्र चित्त हो कर ऐसा किया जावे।

६४३ काले बोर्ड पर सफेद चिन्ह लगालो और विचार करो काला बोर्ड तो विश्व का अंत तक है और सफेद चिन्ह ब्रह्म को प्रगट करता है। आंखें बन्द करके बोर्ड और सफेद चिन्ह को दृष्टि से ओझल कर दो। कुछ काल के अभ्यास से बोर्ड लुप्त हो जावेगा और सब कुछ सफेद दृष्टि गोचर आवेगा।

६४४. जब तुम प्राणायाम करो और तुम्हारा प्राणायाम समाप्त हो जावे तो कुछ देर आराम करलो। यदि तुम प्रत्येक प्राणायाम के पश्चात् तीन गहरे श्वांस ले लो तो तुमको काफी आराम मिल जावेगा। जब तुम श्वांस को बाहर निकालते हो और अन्दर लेते हो तो शब्द नहीं करना चाहिए। धीरे से श्वांस को अन्दर लो और आसानी से बाहर निकाल दो।

६४५. जिस प्रकार पानी का कोई आकार नहीं होता वरन पानी जिस पात्र में डाला जाता है उसीका आकार धारण कर लेता है इसी तरह परमात्मा जो कि निराकार हैं अपने भक्त के लिए आकार धारण कर लेता है।

६४६. सदैव दस सिद्धान्तों को याद रक्खो १ सत्य बोलो २ किसी को कष्ट मत दो ३ शुद्ध आचार और पवित्र विचार रक्खो ४ कुसंग से बचो और सत्संग करो ५ मृत्यु को सदैव याद रक्खो ६ अपने कर्तव्य कर्म्म को नियम से पूरा करो। ७ पूर्ण सन्तोष का अभ्यास करके सदैव खूब प्रसन्न रहो ८ दिन में जो काम करो उनकी अपने चित्त में खूब आलोचना करो ९ किसी बुरे विचार को चित्त में स्थान न दो। १० पूर्ण रूप से परमात्मा की शरण जाओ और परमात्मा पर पूर्ण विश्वास करो।

६४७. इश सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी।

योगी, सर्वस्य, प्रभवं, प्रलयम् हि भूतात्मा॥

यह प्रधान आत्मा सब का प्रभु, सब का ज्ञाता, सब की अन्तरात्मा का स्वामी, सब भूतों का आदि कारण और मूल है। प्रधान आत्मा वह है जिसको प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान होता है।

६४८. आत्म साक्षात्कार के लिए तीन बातों का होना बड़ा जरूरी है (१) गुरु भक्ति अर्थात् ज्ञान दाता की आज्ञा मानना और उनसे प्रेम करना २ जिज्ञासा अर्थात् मोक्ष की अभिलाषा ३ सत्संग की उत्कट अभिलाषा जिसमें यह तीन गुण हैं वह संसार भव सागर को पार कर सकता है।

६४९. परमात्मा को प्राप्त करने के दो मार्ग हैं प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग प्रवृत्ति मार्ग कर्म्म का है निवृत्ति मार्ग त्याग का है इसको ज्ञान योग कहते हैं। कर्म्म योग ज्ञान का साधन है।

६५०. गीता के प्रथम अध्याय के १ श्लोक में कुरुक्षेत्र का दूसरा नाम धर्म्मक्षेत्र है। 'केवल ज्ञानेन के लयं' मोक्ष केवल आत्मा के ज्ञान से ही प्राप्त होता है। यह श्रुतियों का जोर से ढिंढोरा है। उपनिषद् बल पूर्वक कहते हैं कि हृदय के ज्ञान से मुक्ति होती है।

६५१. गीता का ज्ञान मनुष्य मात्र के लिए है। अर्जुन को तो भगवान् कृष्ण ने ज्ञान का प्रकाश करने के लिये निमित मात्र बनाया था।

"नाहम् वसामि वैकुण्ठे योगिनाम् हृदय न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

न तो मेरा वास वैकुण्ठ में है और न योगियों के हृदय में, हे नारद मैं तो वहाँ रहता हूं जहां मेरे भक्त प्रेम से मेरा गान करते हैं।

६६२. जिस प्रकार घी के स्वाद का जिह्वा पर प्रभाव नहीं पड़ता उसी प्रकार संसार के सब काम करते हुए तुम्हारे चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और तुमको निर्लेपता और असंगता का भाव स्थिर रखना चाहिए। यही ज्ञान है और यही संयम है। तुमको शनै २ चित्त का इसी प्रकार साधन करना चाहिए। हजार प्रकार की कठिनाइयों में भी इस निर्लेप और असंग भाव को बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि तुम इस अभ्यास को प्रयत्न पूर्वक जारी रक्खो और मन का साधन करोगे तो प्रत्येक असफलता दृढ़ता का काम देगी। इसको सदैव याद रक्खो।

६५३. जिस प्रकार सूर्य काले बादलों से ढक जाने पर उनसे प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार तुम संसार में काम करो और उससे प्रभावित मत हो। जिस प्रकार आंख आँसुओं से प्रभावित नहीं होती है इसी प्रकार तुमको बनावटी सुख दुःख से प्रभावित नहीं होना चाहिए। जैसे मणि बादलों से प्रभावित नहीं होती है इसी तरह संसारी बातों से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

६५४. जिस प्रकार पानी अनेक रंगों के साथ मिलने पर भी एक ही रहता है उसी प्रकार तुम्हें भी संसार में सदैव शान्त रूप से रहना चाहिये।

६५२. यह गहरी नींद (दरया सशुप्ती या जड निद्रा) जब कि सोने वाला कोई स्वप्न नहीं देखता और नाहीं कोई इच्छा रखता।

६५५. ओम का तीसरा चरण पूजना (वह चेतनता जो कि गहरी नींद में भी उपस्थित होती है) है जिसका मण्डल गहरी निद्रा है जिसमें सब एक अवस्था में हो जाते हैं, जो ज्ञान का समूह है, जो आनन्द है, जो उस आनन्द को भोग करता है जो ज्ञान का पथ या द्वार है (या जिसका ज्ञान है या जिसका शरीर पवित्र ज्ञान से मिश्रित है।

६५६. पुस्तक पढ़ने के पूर्व हरि ॐ का उच्चारण करो। और जिस समय समाप्त करो तब भी हरि ॐ का उच्चारण करो। तुम जो पढ़े हो उसे नहीं भूलोगे यह गुप्त और पेटेण्ट औषधि है। तुम इस प्रधान जातीय भक्षक, विशेष, औषधि का प्रयोग करोगे।

६५७. बाजीगर एक कपटी सन्दूक में एक छोटी देह को छुपा देता है और फिर एक तीक्ष्ण चाकू देह के पेट में मारता है। खून अधिकता से निकलने लगता है। सर्वजन जो उपस्थित हैं और दृश्य को देख रहे हैं खून को देखते हैं और कुछ तो बेसुध और मूर्छित से हो जाते हैं और फिर वह उसे उसके नाम से पुकार उठता है और वह हंसता

हुआ उस स्थान पर एक जली से आजाता है। इसी प्रकार माया की बाजीगरी इस विश्व की उत्पत्ति में है। जिस प्रकार बाजीगर पर कोई प्रभाव उसकी साफ (बाजीगरी) का नहीं पड़ा उसी प्रकार ब्रह्म पर माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिस प्रकार बाजीगर साक्षी की भान्ति खड़ा रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी मौनी साक्षी है प्रकृति के कानों का पर्यावेक्षण करता है।

६५८. बाजीगर एक धागे को आकाश में फैंकता है और फिर वह उसी के सहारे चढ़ते हुए अपने सामान और सजावट के साथ अदृश्य हो जाता है। फिर उसका शरीर भूमि पर खण्ड खण्ड हो कर गिरने लगता है और वह उसी समय तुरन्त ही उसी बाजीगर की मूर्त्ति में जुड़ने लगते हैं। (अर्थात् बाजीगर का रूप बन जाता है) जो इस भ्रम या बाजीगरी को देखते हैं वह इसके अर्थ और सार या तत्त्व को नहीं समझते। इसी प्रकार सुषुप्ती स्वप्न, और जाग्रित अवस्था का भ्रम ऊपर फैंके हुए धागे के समान है और ब्रह्मा, तेजस इत्यादि उस बाजीगर के समान हैं जो धागे पर चढ़ता हुआ दीखता है। माया का यथार्थ परिचालक सदैव धागे से उससे जो चढ़ता है सर्वथा पृथक् रहता है। और जिस प्रकार सब समय यह मनुष्य भूमि पर खड़े हुए माया वश (छल वश) दूसरों को अदृश्य है। सो इसी प्रकार अचल और यथार्थ वस्तुओं की यथार्थता, सर्वथा सनातन सत्य सर्वदा ही उपस्थित रहेगा। इसलिये मोक्ष (बन्धनों से मुक्तता) के इच्छुक सर्वदा ब्रह्म का चिन्तन करें और माया का भ्रम से दिखाई देती है। ही आजाता है।

६५९. किसी उद्देश के बिदून ही परमात्मा का स्वभाव सृष्टि की रचना करना है। उसका क्या उद्देश्य हो सका है जिस की सब इच्छाएं पूर्ण हो गई हों।

६६०. सब बाह्य भेदों को त्याग दो। वे मानसिक कृति के अनुसार ही हैं। सृष्टि एक माया है। अविद्या का ही प्रधान राज है। इस अविद्या रूपी गांठ को ज्ञान से काट दो। ज्ञान ही मोक्ष दायक है। "मैं कौन हूं" ऐसा विचार करने से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से ही तुम अपना यथार्थ स्वरूप जान सकते हो। तुम इसे भूल गये हो। इसको याद करो और पहिचानो। यही तुम्हारा परम कर्तव्य है। येन केन प्रकारेण इसे ही करो। उत्पादन या जनन और पालन तो अपने आप बनाये हुए कर्तव्य हैं और यह अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं।

६६१. अय! संसार के निर्लेप कार्य कर्त्ताओ और सत्य के प्रचारको! एक समूह को एकत्रित करने की ओर ध्यान मत दो चाहे इसे एक ही सुने और कोई भी नहीं सुने तो तुम अपने कर्तव्य पर अटल रहो। इसका परिणाम तो उस एक महान आत्मा परमात्मा के हाथ है जो अद्वितीय है। और तुम्हें तो परिणाम से कोई प्रयोजन ही नहीं (मा फलेशु कदाचन)

६६२. कर्म योगी और धार्मिक प्रचारकों का पथ आपत्तियों से पूर्ण है। मनुष्य चाहे घृणा करें, धिक्कारें, ताना मारें या निन्दा करें, पीछे, प्राण लेलें परन्तु निष्पक्ष रहो और अपने लक्ष्य निश्चय के लिये उद्यत हो जाओ और मरने तक को उतारु रहो। और सत्य का ही ढंढोरा पीटो और सत्य ही विजय प्राप्त करा देगा।

६६३. मनुष्यों पर जोर दो कि आएं प्रार्थना करें, और शान्त हो कर बिना किसी गुरु गपाड़ा के ज्ञान प्राप्ति करें। कोई गर्व या वादानुवाद

(शास्त्रार्थ) नहीं होना चाहिये। मन इच्छुकों को जाने दो।

६६४. परमात्मा से प्रार्थना करो और जाप करो। और यही तुम्हारे पक्षाघात या लेखक की ऐंठ की उत्तम औषध है। तुम नाड़ी तो शरीर और नाड़ी मन हो। तुम सदैव से ही पवित्र आत्मा हो। क्या अब भी विलाप के लिये स्थान है? आत्मा निर्माण या अनमाया (आरोग्य) है। सर्वदा अपने चित्त में यह विचार स्थिर रक्खो। इससे तुम्हारे में शक्ति आयगी। आंखें बन्द करलो और शक्ति को और स्वांस को आत्मा के रास्ते खींचो।

६६५. योग उसके लिये जो योग शास्त्र से परिमाणित भोजन, जो कि एक योगी को करना चाहिये, उससे अधिक भोजन करता है, सम्भव नहीं है। भोजन का परिमाण यह है कि आधा पेट तो भोजन और चौथाई पेट पानी और चौथाई वायु की स्वतन्त्र गति के लिये छोड़े। यह योग शास्त्र में मिताहार कहा जाता है। भोजन का संयम और नियम नवपरमत ग्राहों को अत्यन्त आवश्यक है। उड़ाऊ चटोरा या पेटू से योग बहुत दूर है।

६६६. योग जिज्ञासु जो इस जन्म में योग में असफल रहा वह अपनी आधुनिक उपस्थित दशा से नीचे नहीं गिरेगा। वह योग भ्रष्ट कहा जायगा। वह योग संस्कार के कारण दूसरे जन्म में द्विगुन उत्साह और पौरुष से 'योगरूढ़ दशा में पहुंचने का प्रयत्न करेगा जिस दशा में मनुष्य अपने निजानन्द स्वरूप में स्थित हो जाता है। वह अपने आत्मिक आनन्द में ही मग्न हो जाता है।

६६७. प्रकृति ही संस्कार पूर्व जन्म के अपने किये हुए पाप और पुन्य कर्म) हैं जो इस जीवन के प्रारम्भ में ही प्रकट होते हैं। जब यह प्रकृति अपनी शान्त या अदृश्य अवस्था में रहती है अव्यक्त कहते हैं प्रकृति में एक स्पन्दन (कंप कंपी) उत्पन्न होता है और तीनों गुण, सत, रज, तम प्रकट होते हैं। और तब यह संसार व्यक्त अर्थात् आरम्भ होता है।

महात्माओं के वचन

मनुष्य का विश्वास करो और यह बात उस पर प्रगट भी कर दो कि हम तुम्हारा विश्वास करते हैं परन्तु यदि तुम उस पर सन्देह करोगे तो वह अपने स्वभाव के अनुसार तुम्हारे साथ व्यवहार करेंगे।

बुद्धिमान पुरुष महान कामों का आरम्भ करते हैं परन्तु उन कामों को पूर्ण पुरुषार्थी करते हैं।

किसी मनुष्य की सब से उत्तम सहायता उसमें आत्म विश्वास उत्पन्न करना है।

मनुष्य धन से धनवान नहीं होता वरन आवश्यकताओं के कम करने से धनी होता है। एक बार महात्मा सुकरात के पास से कोई मनुष्य बहुत से रत्न लेजा रहा था उस समय सुकरात ने कहा "मैं बहुत ही आनन्द में हूं कारण मैं बहुत पदार्थों की इच्छा नहीं रखता"।

जो मनुष्य संशय वादी है वह एक पहरे दार की भान्ति जीवन व्यतीत करता है जो कभी चिन्ता से रहित नहीं रहता।

यदि तुम पर आपत्ति आजावे तो भी हंसते रहो और प्रयत्न करते रहो भगवान सब काम में सहायक होंगे।

यदि तुमने कोई भूल कर दी है तो उसके स्वीकार करने से कभी मत डरो, प्रत्येक मनुष्य

गलती करता है, संसार में पूर्ण कोई नहीं है। गलती करना लज्जा की बात नहीं है लज्जा की बात है गलती को न मानना।

जो आदमी बहुत काम करने वाला है उसके पास अपने काम की बड़ाई करने के लिए अवकाश ही नहीं है।

कोई भी मनुष्य अपने ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं कर सकता क्योंकि ज्ञान कर्म से सदैव आगे रहता है।

कोई ऐसा काम अपने हाथ में लो जिसके करने में तुम्हारा चित्त तल्लीन हो जावे, प्रसन्न रहने वाले मित्रों का समूह बनाओ, खूब खिल खिलाकर हंसो। यह सब से उत्तम औषधि है॥

कोई पाप कर्म ऐसा नहीं है जो बिना फल दिए रह जावे, चाहे पाप का फल देर में भोगना पड़े परन्तु भोगना अवश्य पड़ेगा।

संसारी बड़े आदमी के संग में रहने से मनुष्य को बड़ा भारी त्याग करना पड़ता है। उसके साथ में हमको अपने व्यक्तित्व और न्याय बुद्धि तक को स्वाहा करना पड़ता है।

जीवन में सफलता केवल योग्यता पर निर्भर नहीं रहती है, यह बहुधा साहस, चतुराई और सामग्री की प्राप्ति पर निर्भर रहती है।

प्रत्येक मनुष्य अपनी मूर्खता को छुपाना चाहता है परन्तु कोई भी ऐसा करने में समर्थ नहीं हो सकता।

सदैव साहस और सहानुभूति से परिपूर्ण और उद्यत रहना चाहिए। बड़ी आयु में विचार नवीन और सुन्दर बन जाते हैं।

उपदेश

अब ओंकार मंगल स्वरूप हो, सच्चित आनन्द स्वरूप परमात्मा सब को शान्ति और भक्ति, मुक्ति प्रदान करे। सत्पथ पर आरूढ़ होना और दृढ़ता की तलवार हाथ में लेकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि शत्रुओं को मृत्यु के घाट उतार देने के लिये अपने जीवन को समझना चाहिए और नित्य प्रति प्राणायाम व व्यायाम करना चाहिये।

प्रातःकाल और सायंकाल यह हिसाब लगाना चाहिए कि कौनसा काम हमने दिन भर में स्वार्थ के लिए किया। प्रत्येक काम परमात्मा की प्रसन्नता के लिए करना चाहिए।

जल बिन्दु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतु सर्व विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च॥

सब विश्व को परमात्मा का स्वरूप समझ कर उसका रचयिता अन्तरात्मा, सत्ता स्फूर्ति देने वाला परमात्मा है उसको नमस्कार करना चाहिए।

किसी स्थान पर पद्मासन या किसी प्रकार से सीधे बैठ कर शान्ति से प्राणों को बाहर निकालना चाहिए और यह ख्याल करना चाहिए कि प्राणों रूपी पुष्पांजली परमात्मा को समर्पण कर रहे हैं। जब प्राण बाहर न ठैर सकें, बेचैनी और घबराहट करें तो उसको छाती फुलाकर शरीर में और सब नसों में जोर से भरना चाहिए और ओ३म् का गुप्त जप करना चाहिए जब भीतर प्राण बाहर निकलने लगें तो लम्बा श्वास लेकर बाहर निकाल देना चाहिए।

छाती में श्वासों को भर कर लम्बा श्वास लेकर बाहर निकालना चाहिए। श्वास को भीतर घोटने का नाम प्राणायाम है।

आत्मा का प्रेम स्वरूप है इसलिए सब से प्रेम बढ़ाना चाहिए। किसी से लड़ना झगड़ना नहीं चाहिए शान्ति से रहना चाहिए जो अपना

बुरा चाहे उसका भी भला चाहना चाहिए। सब प्यासों को पानी पिलाना चाहिए और भूखों को भोजन देना चाहिए। सब को ध्यान करना चाहिए और परमात्मा के नाम का जप करना चाहिए और कानों से परमेश्वर के चरित्रों की कथा सुननी चाहिए। सब से ऐसी मीठी वाणी बोलनी चाहिए। मानों हमदर्दी व प्रेम का मेह बरस रहा हो, भगवान् पर वाणी रूपी पुष्प चढ़ रहे हों।

सब आदमी भगवान की खूब भक्ति किया करें 'नारायण हरि ओ३म् नारायण हरि ओ३म्' इस मंत्र का जप किया करें। सब को अपना आत्मा समझ कर सब के साथ प्रेम का बर्ताव करना चाहिए। खूब प्रेम से ठण्डा और मधुर पानी पिलाना चाहिए और यह भावना करनी चाहिए कि "यह पानी इनके शरीर में पहुंच कर रक्त के कण २ में भक्ति और भगवान् का नाम पैदा करदे, सुख और शान्ति भरदे। सब अपने आत्मा ही दीखने लग जाय, सब से सब को प्रेम हो। आनन्द ही आनन्द छा जाय, परमात्मा ही परमात्मा नज़र आजाय। उसके सिवाय यह जो कुछ दीख रहा है, भास हो रहा है, वह कुछ भी नहीं है। यह परमात्मा ही का रूप नाना प्रकार का जगत् होय भास रहा है। जैसे रज्जु सांप का रूप होय भास रही है। वास्तव में वह रज्जू ही है। ऐसे ही यह परमेश्वर का रूप ही है और कुछ नहीं। हरएक वस्तु बनावट की प्रतीत हो रही है और कुछ नहीं। इस का बनाने वाला अदृश्य है वह परमेश्वर परमात्मा है, सब का आत्मा है, वह ज्योति है जिसके द्वारा सब देखते हैं, खाते हैं, पीते हैं, उठते, बैठते हैं, सर्ग में उत्पन्न हो कर प्रलय में उसी में लय हो जाते हैं। वही एक परमात्मा सब का उपास्य देव है। उसको सब नमस्कार करो, वह सब का भला करेगा। ऐसा कर्म्म करो जिसके द्वारा परमात्मा प्राप्त हो। गौओं की सेवा, वृक्षों का पालन, परमेश्वर का भजन, सब कर्म्म परमात्मा के अर्पण करना चाहिए। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई इत्यादि सब भगवान् के पुत्र हैं, सब का पिता एक परमात्मा है। सब को भाई २ के नाते से देखना चाहिए। हम सब के हैं और सब हमारे हैं हम सब परमात्मा का अंश हैं, उससे उत्पन्न हुए हैं और उसी में लय हो जावेंगे। वास्तव में वही सब कुछ है उसको नमस्कार हो, धन्यवाद हो, सब कुछ उसके लिए हो। अपना आप भी वही वह है। उसके सिवाय कोई नहीं। जैसे मिट्टी के खिलौना बरतन सब कुछ मिट्टी ही है ऐसे सब हिन्दु मुसलमान इत्यादि सारा ब्रह्माण्ड उसी का रूप है। उस का रूप है। उसको नमस्कार हो, रोम रोम से और रक्त के कण २ से उसका धन्यवाद हो। सारे जगत् का परमाणु उसका धन्यवाद कर रहा है, प्रणाम कर रहा। वह हमारा अपना आप है, उसके सिवाय न कोई माई है न बाप है।

भजन

टूटी गांठन तार गोपाला ॥ टेक ॥
सकल की चिन्ता जिस मन माँहि।
तिसके वृथा कोई नाहीं ॥ १ ॥
रे मन मेरे सदा हरि जप।
अविनाशी प्रभु आपहि आप ॥ २ ॥
आपन कीया कछु नहिं होय।
जैसा प्राणी सोचे कोय ॥ ३ ॥
तिस बिन तेरे कहिं कछु काम।
गति नानक जप एक हरि नाम ॥ ४ ॥

२

अपने जन का पर्दा ढाकै।
अपने सेवक को सर पै राखै ॥ १ ॥
अपने दास को देत बड़ाई।
अपने सेवक को नाम जपाई ॥ २ ॥
अपने सेवक की आपपति राखै।
ताकी गति मति कोई कोई न लखै ॥
प्रभु के सेवक को कोई ना पहुंचे।
प्रभु सेवक ऊंचे से ऊंचे ॥ ४ ॥
जो प्रभु अपनी सेवा लाया।
नानक सेवक दस दिसि प्रगटाया ॥

३

सनक सनन्द महेश समाना।
शेष नाग तेरा मरम न जाना ॥ १ ॥
हनूमान सारि गरुड़ समाना।
सुरपति नरपति नहिं गुण जाना ॥ २
चारि वेद अरु स्मृति पुराना।
कमलापति कवला नहिं जाना ॥ ३ ॥
कहि कबीर सो भरमै नाहीं।
पग लगि राम रहै शरनाहीं ॥ ४ ॥

४

दरमादे ठाढ़े दर बारि ॥ टेक ॥
तुझ बिन सुरति करै को मेरी,
दर्शन दीजै खोलि किवारि ॥ १ ॥
तुम धन धनि उदार तियागी,
श्रवणन सुनियतु सुजसि तुमार ॥ २ ॥
मांगहु काहि रंक सब देखहु,
तुमही ते मेरो निस्तार ॥ ३ ॥
जैदेउ नामा बिप्र सुदामा,
तिन कउ क्रिपा भई है अपार ॥ ४ ॥
कहु कबीर तुम समरथ दाते,
चारि पदारथ देत न बार ॥ ५ ॥

५

इहु धनु मेरा हरि को नाऊं।
गाँठि न बांधहु बेचि न खाऊं ॥ १ ॥
नाउ मेरे खेती नाउ मेरे बारी।
भगति करउं जनु शरण तिहारी ॥ २ ॥
नाउ मेरे माया नाउ मेरे पूंजी।
तुमहि छोड़ न जाऊं नहि दूजी ॥ ३ ॥
नाऊं मेरे बंधवि नाऊं मेरे भाई।
नाऊं मेरे संगि अन्त होई सहाई ॥ ४ ॥
माइ आ महि जिसु रखै उदासु।
कहि कबीर हउ ताको दासु ॥ ५ ॥

६

गुरु की मति तू लेहि अयाने।
भक्ति बिना बहु डूबे सयाने ॥ १ ॥
हरि की भक्ति करो मन मीता।
निर्मल होय तुम्हारो चीता ॥ २ ॥
चरण कमल राखो मन माहीं।
जन्म २ के किल विष जाहीं ॥ ३ ॥
आप जपो और नाम जपाओ।
सुनत कहत रहत गति पाओ ॥ ४ ॥
सार भूत सत्य हरि को नाऊ।
सहज स्वभाव नानक गुण गाऊं ॥ ५ ॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें ।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।-)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
९.	सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२.	शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३.	सारसंग्रह	"	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।)
१५.	मनुस्मृति सार	"	≡)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	"	।≡।
१७.	भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८.	भगवदंक	"	॥।)
१९.	गवांक	"	१)
२०.	महात्मांक	"	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजना चाहिये ।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

मुद्रक तथा प्रकाशक महानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।